॥ नमो राघवाय ॥

प्रणेता

श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य

स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज

प्रकाशक
जगद्गुरु रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय
चित्रकूट(उत्तर प्रदेश)-२१०२०४
दूरभाष-०५१९८-२२४४१३,०७६७०-२६५४७८

प्रकाशन तिथि
मकरसंक्रान्ति, १४ जनवरी २०१०
जगद्गुरु स्वामी रामभद्राचार्यजी महाराज
का षष्टिपूर्ति महोत्सव

पुस्तक प्राप्ति स्थान
जगद्गुरु रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय
चित्रकूट (उत्तर प्रदेश)-२१०२०४

श्रीतुलसीपीठ, आमोदवन, पो. नयागाँव, चित्रकूट
जनपद-सतना (मध्य प्रदेश)-४८५३३१

न्यौछावर
१०१.०० रुपये (एक सौ एक रुपये मात्र)

मुद्रक
रंजन कम्युनिकेशन्स
एफ११६ए, प्रथम तल, कटवरिया सराय
हौज खास, नई दिल्ली-११००१६
दूरभाष:०११-२६८५२१२४

॥ नमो राघवाय ॥

॥ पुरोवाक् ॥

कवि स्वयं प्रजापति है ''कविरेकः प्रजापतिः'' या यों भी कहें कि स्वयं प्रजापति ही कविरूप में परिणत होते हैं, तो इसमें कोई अतिरंजना नहीं। वस्तुतः यह सृष्टि शब्दमयी है, जैसा कि वैयाकरण भी मानते हैं कि आदि-निधन रहित अक्षरतत्व परमात्मा मूलतः शब्दाकार ही हैं और वही अर्थरूप में अर्थात् जगदाकार होकर परिणत होते हैं। तत्वतः जगत् ही रामायण है क्योंकि राम के अयन को रामायण कहते हैं। अयन का अर्थ है घर, जगत् परमेश्वर का घर है। क्यों कि विधाता का प्रपंच गुण एवं दोषों का मिश्रण है, अतः गुणात्मक वृत्तियों के आदर्श हैं श्रीराम, और ऋणात्मक वृत्तियों का निदर्शन है रावण।

सृष्टि ही की भाँति काव्य चिर पुरातन होता हुआ भी नित्य नूतन है। क्योंकि कविता सौन्दर्य की अभिव्यक्ति है और सौन्दर्य में नित्य नूतनता अनिवार्य तत्व है। इसी नूतनता की परंपरा में प्रस्तुत है मेरे द्वारा प्रणीत ''अष्टावक्र हिन्दी महाकाव्य''। यह मुख्यरूप से विकलांगों की सार्वभौम समस्याओं के समाधानात्मक सूत्रों के सङ्कल्परूप में प्रस्तुत किया गया है। इसमें निर्दिष्ट **संभव, सङ्क्रान्ति, समस्या, सङ्कट, सङ्कल्प, साधना, संभावना तथा समाधान** ये आठों सर्ग विकलांगों की आठ मनोवृत्तियों के विश्लेषण मात्र हैं। विकलांग वाह्य समस्याओं से कम पर आन्तर समस्याओं से अधिक जूझता दिखता है। सङ्घर्ष से ही उत्कर्ष की प्राप्ति होती है, और उस सङ्घर्ष की प्राणशक्ति है सङ्क्रान्ति। सङ्क्रान्ति का अर्थ है सम्यक् क्रान्ति, उसका मूलरूपेण विचारों से संबन्ध रहता है। फलतः वैचारिक क्रान्ति को ही सङ्क्रान्ति कहना चाहिए, यही यहाँ कवि का कथ्य है।

अष्टावक्र की कथा का महाभारत उपजीव्य है, या इसे यों कहें तो अधिक समीचीन होगा कि त्रिवेणी सङ्गम की ही भाँति अष्टावक्र महाकाव्य प्रयाग में तीन स्रोतों से कथा स्रोतस्विनी का समाहरण किया गया है ।

महाभारत पुराण साहित्य तथा वाल्मीकीय रामायणमें इस कथावस्तु के उत्स उपलब्ध हैं। वाल्मीकीय रामायण में अष्टावक्रीय कथा का एकमात्र संकेत उपलब्ध है, श्रीराम-रावण के संग्राम के अनन्तर प्रभु श्रीराम को विजयश्रीका वर्धापन देने स्वर्ग से पधारे हुए महाराज दशरथ श्रीराम को संबोधित करते हुए इस प्रकार कहते हैं -

तारितोऽहं त्वया पुत्र सुपुत्रेण महात्मना ।
अष्टावक्रेण धर्मात्मा कहोलो ब्राह्मणो यथा ।।

(वा.रा. ६-११९-१६)

अर्थात् हे मर्यादापुरुषोत्तम पुत्र श्रीराम! महानअन्तःकरण वाले पुत्रश्रेष्ठ आपके द्वारा मैं दशरथ उसी प्रकार धर्मसंकट रूप महासागर से तार दिया गया, अर्थात् बाहर निकाल लिया गया (उबार दिया गया) जिस प्रकार धर्मात्मा कहोल ऋषि अष्टावक्र के द्वारा छद्म बन्दी से छुड़ा लिए गए थे। महाभारत के वनपर्व में यह कथा विस्तृतरूप में उपलब्ध होती है। इस कथा का सार है सम्यक् क्रान्ति जिसका मूल है अन्याय का विरोध, असत् परंपरा का सात्विक विद्रोह, सत्य का निर्भीकता से ख्यापन।

गर्भस्थ अष्टावक्र पिता कहोल के अशुद्ध वेदपाठ पर क्षुब्ध होकर प्रखर विरोध प्रस्तुत करके पिता का शापभाजन होकर समस्याओं से सङ्घर्ष करते हुए साङ्कल्पिक साधना से जनकराज के बन्दी द्वारा निगृहीत सागर निमज्जित अपने शापदाता पिता को मुक्त करने में सफल होते हैं और अपनी प्रतिभा से बन्दी को पराजित

कर जटिलतम समस्या से प्रसूत सङ्कट का समाधान करने में कृतकार्य हो जाते हैं। यही इस महाकाव्य का जीवन तत्व है। यह करुणरस संवलित वीररस प्रधान महाकाव्य है। यहाँ सुधी पाठकों को पग-पग पर वीररस का स्थायी भाव उत्साह दृष्टिगोचर होता रहेगा। इसमें आठ सर्ग हैं, और प्रत्येक सर्ग में १०८ छन्दों की संयोजना इस महाकाव्य की प्राविधिक चित्रात्मकता है।

मैं यह कह सकता हूँ कि आधुनिक महाकाव्यों की परंपरा श्रृङ्खला में मेरे द्वारा प्रवर्तित यह नवीन परंपरा इक्कीसवीं शताब्दी का हिन्दी साहित्य के लिए अभिनव उपहार होगा। इस परंपरा को मैंने क्रान्तिवाद नाम दिया है। मैं पूर्ण आशान्वित और विश्वस्त हूँ कि क्रान्तिवाद नामक नव्यतम परंपराप्राचीर में प्रतिष्ठापित 'अष्टावक्र महाकाव्य' नामक यह सारस्वत प्रासाद सुधीजनों के मनः प्रसाद का संपोषक अवश्य बनेगा।

माघ कृष्ण प्रतिपद् शुक्रवार	इति मङ्गलमाशास्ते
विक्रमी संवत् २०६६ तदनुसार	जगद्गुरु रामानन्दाचार्य
०१-०१-२०१०	स्वामिरामभद्राचार्यो गिरिधरकविः

धर्मचक्रवर्ती, महामहोपाध्याय श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज की

जीवन जाह्नवी

अनादिकाल से प्राणिमात्र के ऐहलौकिक एवं पारलौकिक अभ्युदय प्राप्त कराने वाले सनातनधर्म की जगद्गुरुपरम्परा में ऐसे विरले महापुरुष इस धराधाम पर अवतीर्ण हुए हैं, जिन्होंने अपने दिव्यज्ञान, शाश्वतचिन्तन एवं महनीय तप के द्वारा सम्पूर्ण विश्व का सफल मार्गदर्शन किया है। सौभाग्य से इसी अक्षुण्ण परम्परा में धर्मचक्रवर्ती, महामहोपाध्याय, पदवाक्यप्रमाणपारावारीण, समस्ततुलसीसाहित्यकण्ठस्थीकृत, श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्यजी महाराज का शुभनाम बहुत श्रद्धा और गर्व से लिया जाता है। सनातनधर्म के क्षेत्र में शास्त्रीय समाधान एवं राष्ट्रदेव के आराधन में सन्तों का योगदान प्रस्तुत करने वाले दुर्लभ महापुरुषों में पूज्यपाद जगद्गुरुजी की गणना सम्मानपूर्वक की जाती है।

आविर्भाव – उत्तर प्रदेश के जौनपुर जनपद में शांडीखुर्द नामक ग्राम में १४ जनवरी १९५० ई. को मकर संक्रान्ति की प्रथमप्रहरीय रात्रि वेला में वसिष्ठगोत्रीय सरयूपारीण ब्राह्मण मिश्रवंश में पूज्य माता श्रीमती शची देवी एवं पूज्य पिता पं. राजदेव मिश्र के घर एक अलौकिक दिव्यशक्ति का आविर्भाव हुआ। पूज्य पितामह पं.

सूर्यबली मिश्र जी ने इस अद्‌भुत बालक का नाम 'गिरिधर मिश्र' रखा।

ईश्वरेच्छा बलीयसी – जगन्नियन्ता परमपिता ने बालक गिरिधर के हितार्थ सांसारिक प्रपंचों से दूर रखने के लिए कुछ और ही सोच रखा था। अतः जन्म के दो मास पश्चात् ही बालक के कोमल नेत्रों को रोहे रूपी राहु ने सदा-सदा के लिए ग्रस लिया। यह घटना पारिवारिक सदस्यों के लिए तो हृदयविदारक बनी, किन्तु बालक गिरिधर और सम्पूर्ण मानवमात्र के लिए वरदान सिद्ध हुई। वाह्यचक्षु बन्द होने के साथ ही दिव्यज्ञान के अन्तर्चक्षु खुल गये। तभी से इस बालक को निरन्तर परमात्मतत्त्व के चिन्तन और मनन के अतिरिक्त अन्य कोई सांसारिक प्रपंच लेशमात्र भी स्पर्श नहीं कर सका।

प्रारम्भिक शिक्षा – बालक गिरिधर को अन्तर्मुखता का उदय होते ही दिव्य मेधाशक्ति तथा विलक्षण स्मरणशक्ति के बल पर कठिनतम् श्लोक आदि अनेक दुर्लभ विधाएँ एक बार सुनकर ही कण्ठस्थ हो जाती थीं। पाँच वर्ष की अल्पायु में ही इस ''गौरवटु'' ने सम्पूर्ण गीताजी तथा आठ वर्ष की अवस्था में पूज्य पितामह पं. सूर्यबली मिश्र जी के प्रयास से श्रीरामचरितमानसजी क्रमबद्ध-पंक्तिसंख्या सहित कण्ठस्थ करके मानो यज्ञोपवीत संस्कार कराने की पात्रता स्वयं अर्जित कर ली। इस दिव्यप्रतिभा से समन्वित स्मरणशक्ति के फलस्वरूप शनैः-शनैः संस्कृत व्याकरण के मूर्धन्य ग्रन्थ, श्रीमद्‌भागवतमहापुराण, अनेक उपनिषद तथा पूज्यपाद गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी के सम्पूर्णग्रन्थ धाराप्रवाह शैली में कण्ठस्थ हो गये। तदनन्तर श्रीअवधजानकीघाट के प्रवर्तक श्री १००८ श्रीरामवल्लभाशरणजी महाराज के कृपापात्र पं. ईश्वरदासजी महाराज ने बालक गिरिधर को श्रीराममन्त्र की दीक्षा दी। आगे

चलकर यही बालक गिरिधर युगपुरुष की कोटि में आकर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज के नाम से प्रख्यात हुए।

उच्चशिक्षा – वैष्णवोचित परम्परा की दीक्षाग्रहण करने के पश्चात् स्थानीय आदर्श गौरीशंकर संस्कृत महाविद्यालय में पाँच वर्ष तक पाणिनीय व्याकरण की शिक्षा सम्पन्न करके आप उच्चशिक्षा हेतु वाराणसी गए। सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी की शास्त्री एवं आचार्य परीक्षाओं में सर्वप्रथम स्थान प्राप्त करके अनेक स्वर्णपदक प्राप्त किये। इसी कालखण्ड में अखिल भारतीय संस्कृत अधिवेशन में व्याकरण-सांख्य-न्याय-वेदान्त-श्लोकान्त्याक्षरी और समस्यापूर्ति के असाधारण ज्ञान के फलस्वरूप प्रथम पाँच पुरस्कार प्राप्त किये। उल्लेखनीय है कि पूज्य आचार्यचरणों ने अभिनवपाणिनि, व्याकरण-विभागाध्यक्ष पूज्य पं. श्रीरामप्रसाद त्रिपाठी जी (वाराणसी) से व्याकरण की भाष्यान्त शिक्षा प्राप्त की। इतना ही नहीं इसी विश्वविद्यालय से ''अध्यात्मरामायणे अपाणिनीय प्रयोगाणां विमर्शः'' विषय पर अनुसन्धान करके विद्यावारिधि (पी. एच.डी.) तथा ''अष्टाध्याय्याः प्रतिसूत्रं शाब्धबोधसमीक्षणम्'' विषय पर शिक्षा जगत् की सर्वोच्च उपाधि ''वाचस्पति'' (डी. लिट्) प्राप्त की।

जगद्गुरु एवं धर्मचक्रवर्ती उपाधि – सन् १९८७ ई. में पूज्यपाद आचार्यश्री ने अपने इष्टदेव भगवान् श्रीराघवेन्द्र सरकार की विहारस्थली एवं कर्मभूमि श्रीचित्रकूटधाम में श्रीतुलसीपीठ की स्थापना की। तभी से सन्त महात्माओं एवं मनीषियों के द्वारा आप ''श्रीतुलसीपीठाधीश्वर'' के रूप में प्रतिष्ठित हुए। इसी क्रम में २४ जून १९८८ को काशी नगरी में तथा १ अगस्त १९९४ ई. को दिगम्बर

अखाड़ा अयोध्या में अनेक सन्त, महन्त, विद्वान एवं श्रीवैष्णवों द्वारा आपको ''जगद्गुरुरामानन्दाचार्य'' के पद पर विधिवत् अभिषिक्त किया गया। उपाधियों के इसी क्रम में १९९८ में हरिद्वार के महाकुम्भ के पावनपर्व पर पूज्यपाद जगदगुरु जी को विश्वधर्मसंसद द्वारा ''धर्मचक्रवर्ती'' के सर्वोच्च उपाधि से विभूषित किया गया पश्चात् २००१ ई. में भाउराव देवरस पुरस्कार, लालबहादुर शास्त्री केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ (मानित विश्वविद्यालय) नई दिल्ली द्वारा २००२ ई. में महामहोपाध्याय, सन् २००३ ई. में महामहिम राष्ट्रपति द्वारा महर्षि वादरायण पुरस्कार तथा दिवालीबेन मेहता पुरस्कार, २००५ ई. में साहित्य अकादमी पुरस्कार तथा २००६ ई. में रामकृष्णजयदयाल डालमिया फाउण्डेशन द्वारा श्रीवाणीअलंकरण पुरस्कार प्राप्त हुए। सत्य भी है-**क्रियासिद्धिः सत्वे भवति महतां नोपकरणे।**

अनुपम कृतित्व - अत्यधिक प्रसन्नता का विषय यह भी है कि पूज्यपादजगद्गुरुजी के व्यक्तित्व के साथ-साथ कृतित्व भी इतना विलक्षण एवं गम्भीर है कि समस्त विद्वानों के लिए औषध और जिज्ञासु साधकों के लिए पाथेय सिद्ध होता है। पूज्यआचार्यश्री ने संस्कृत, हिन्दी, गुजराती, उड़िया, मैथिली, भोजपुरी, अवधी, ब्रज आदि अनेक भाषाओं में आशुकविता के माध्यम से श्रीरामकथा, श्रीकृष्णकथा एवं अनेक दुर्लभ पौराणिक प्रसंगों को सुन्दर एवं सरस शैली में छन्दोबद्ध किया है।

उल्लेखनीय है कि जगद्गुरु जी की परात्र्हृतम्भरा प्रज्ञा से अब तक ५० पुस्तकें प्रकाशित हैं जिनमें महाकाव्य, खण्डकाव्य, नाटककाव्य, पत्रकाव्य, गीतकाव्य, शतककाव्य, स्तोत्रकाव्य, दर्शन एवं भाष्यग्रन्थ तथा शोधग्रन्थ उल्लेखनीय हैं।

पूज्यपाद जगद्गुरुजी द्वारा प्रणीत संस्कृत-हिन्दी के ग्रन्थों से जहाँ एक ओर धर्मप्राण जनता को लोकोत्तर आनन्दाब्धि में अवगाहन करने का सौभाग्य प्राप्त होता है वहीं दूसरी ओर संस्कृत और संस्कृति के अनेक अनुसन्धित्सुओं को तत्त्व एवं शास्त्रचिन्तन की गम्भीर व समुचित दिशा भी प्राप्त होती है। जनता के साथ-साथ शासकवर्ग भी पूज्यपाद जगद्गुरुजी के इस अनुपम कृतित्व से उपकृत हैं। सन् १९९६ ई. में तत्कालीन महामहिम राष्ट्रपति डॉ. शंकरदयाल शर्मा द्वारा 'अरुन्धती महाकाव्य' का विमोचन सम्पन्न हुआ।

भारत के यशस्वी प्रधानमंत्री माननीय अटल बिहारी वाजपेयी जी द्वारा १९९८ में ऐतिहासिक एवं विशालकाय ग्रन्थ **प्रस्थानत्रयीभाष्य**, अक्टूबर २००२ ई. में २१ वीं शताब्दी के प्रथम संस्कृतमहाकाव्य **श्रीभार्गवराघवीयम्** तथा **श्रीरामचरितमानस भावार्थबोधिनी हिन्दी टीका** का भारत की राष्ट्रपति श्रीमती प्रतिभा पाटिल द्वारा ७ मई २००८ को लोकार्पण उल्लेखनीय है।

अविकल विकलांग सेवा - उल्लेखनीय है कि पूज्य जगद्गुरु जी ने विकलांगता के कालकूट को स्वयं पिया है और उससे अन्य विकलांग बहिन-भाइयों को बचाने के लिए इन्होंने विश्व के प्रथम "जगद्गुरु रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय, चित्रकूट (उत्तर प्रदेश)" की जुलाई २००१ ई. में स्थापना की है। उत्तर प्रदेश शासन ने इन्हीं को इस विश्वविद्यालय का जीवनपर्यन्त कुलाधिपति नियुक्त किया है। सभी प्रकार के विकलांगों को पूर्ण शिक्षित बनाने के लिए तथा उन्हें तकनीकी प्रशिक्षण दिलाने के लिए इस विश्वविद्यालय में निःशुल्क सेवा का अद्वितीय उदाहरण प्रस्तुत किया गया है। विकलांगों को आत्मनिर्भर देखने का स्वप्न संजोने वाले पूज्य जगद्गुरुजी का यह उद्घोष बड़ा मार्मिक है-

मानवता ही मेरा मन्दिर, मैं हूँ उसका एक पुजारी।
हैं विकलांग महेश्वर मेरे, मैं हूँ उनका कृपाभिखारी।।

इति निवेदयते
डॉ. कुमारी गीता देवी मिश्रा

श्री राघवः शन्तनोतु

कतिपय शब्द

अष्टावक्र महाकाव्य मेरे साठ वर्ष के जीवन काल का अनुभव निदर्शन है। मैंने जीवन में जो उतार चढ़ाव देखे और जिन विकलांगीय समस्याओं से आज भी सङ्घर्षरत हूँ उन सबका यह श्वेतपत्र समझा जाना चाहिए। महाकाव्य की रचना को जिस शान्त वातावरण की आवश्कता होती है वह मेरे लिए इस समय की परिस्थितियों के आलोक में संभव न हो पाता। क्यों कि एक ओर आध्यात्मिक जगत का अन्तरंग चिन्तन, पुनः श्रीरामानन्द सम्प्रदाय के आचार्य का दायित्व, ठीक इसके विपरीत जगद्गुरु रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय के जीवनपर्यन्त कुलाधिपति पद का कठोर कर्त्तव्य निर्वहण, साथ ही इस भौतिकवाद में झुलस रहे पर्यावरण की ज्वलन्त समस्याओं का प्रभाव, ऐसे समय अष्टावक्र महाकाव्य जैसे क्रान्तिवादी प्रबन्ध की रचना, यह सब दिवास्वप्न ही रह जाता यदि मेरी अग्रजा डॉ. कुमारी गीता देवी मिश्रा (आप सबकी बुआजी) का मुझको सक्रिय सहयोग न मिलता, अतः उनके प्रति मैं सतत कृतज्ञता का बोध करता रहूँगा। मेरे अन्तेवासी आयुष्मान् चन्द्रदत्त सुवेदी को मैं बहुत बहुत आशीर्वाद देता हूँ जिन्होंने इस ग्रन्थ के लगभग ९९ प्रतिशत भाग का लिपिकरण किया। मेरे विद्यार्थी प्रसून तिवारी और विकास तिवारी भी मेरे आशीर्वाद के पात्र हैं, इन्होंने भी इस महाकाव्य रचना में वातावरणीय सहयोग किया। मैं बहुत आशीर्वाद दे रहा हूँ अपने वात्सल्यभाजन और अपनी जन्मभूमि के निकटतम ग्राम में जन्मे आयुष्मान् शरद श्रीवास्तव को जिन्होंने इसके मुद्रण की रूपरेखा बनाई, और रंजन जी जैसे समर्थ मुद्रक से मेरा परिचय कराया।

मैं भारत के प्रसिद्ध प्रकाशक रंजन जी एवं उनकी धर्मपत्नी भारती रंजन को बहुत बहुत आशीर्वाद दे रहा हूँ जिन्होंने समय की अतिसंकुचित सीमा में इस महाकाव्य को पुस्तक रूप में प्रस्तुत किया। मैं शरद श्रीवास्तव के अभिन्न मित्र बस्ती निवासी चन्द्रभूषण मिश्र को बहुत आशीर्वाद दे रहा हूँ जिनके सात्विक धन के विनियोग से यह महाकाव्य पुस्तकाकारता को प्राप्त हो रहा है। मेरी वात्सल्यभाजन पुत्रवधू अखंड सौभाग्यवती श्रीमती संगीता श्रीवास्तव को भी अनेक आशीर्वाद।

मैं अपने प्रिय परिकर डॉ. सुरेन्द्र शर्मा (सुशील) को भी मंगला नुशंसित करता हूँ जिनके दिल्ली प्रवास के समय पुस्तक को लिपिकृत करने में मुझे स्निग्ध सहयोग मिला। मैं अशोक बत्रा, तृप्ता बत्रा और उनके पुत्र हिमांशु एवं पुत्री भूमिजा को भी अनेक आशीर्वाद दे रहा हूँ, जिन्होंने दिल्ली प्रवास के समय मेरी शुश्रूषा करके महाकाव्य रचना में अनुकूल वातावरण प्रस्तुत किया। मैं माता वन्दना श्रीवास्तव का आभारी हूँ जिन्होंने लिपि संशोधन में अहम् भूमिका निभायी। मैं कभी भी नहीं भूलूँगा अपने प्रिय सखा भारतीय राज्यसभा के यशस्वी सदस्य वरिष्ठ विद्वान् डॉ. जर्नादन द्विवेदी को जिनकी सात्विक सम्मति और सुझाव इस महाकाव्य यात्रामें मेरे लिए पाथेय सिद्ध हुए। अन्ततोगत्वा प्रणाम करता हूँ माँ वीणापाणि को जिनकी वात्सल्यमयी करुणा से मैं यह कार्य पूर्ण कर पाया। यह पुष्प उन्हीं सरस्वती माँ के सरसिजचरणों में समर्पित करते हुए मैं यह दायित्व पूर्ण कर रहा हूँ ॥

इति शुभमाशास्ते
जगद्गुरु रामानन्दाचार्य
स्वामी रामभद्राचार्य

अष्टावक्र महाकाव्य की कथावस्तु

मैने अपने द्वारा प्रणीत अष्टावक्र हिन्दी महाकाव्य की कथावस्तु को चार स्रोतों से संगृहीत किया है वाल्मीकीय रामायण (युद्धकाण्ड), महाभारत (वनपर्व), अष्टावक्र गीता तथा उत्तररामचरितम् (प्रथमअङ्क) से। सर्वप्रथम वाल्मीकीय रामायण के युद्धकाण्ड के ११९ वें सर्ग के १७ वें श्लोक में महर्षि वाल्मीकि ने श्रीराम दर्शनों के लिए स्वर्ग से प्रत्यागत चक्रवर्ती दशरथ के मुख से अष्टावक्रीय कथा का वर्णन प्रस्तुत कराया है। यथा –

तारितोऽहं त्वया पुत्र सुपुत्रेण महात्मना ।
अष्टावक्रेण धर्मात्मा कहोलो ब्राह्मणो यथा ॥

(''बेटा जैसे अष्टावक्र ने अपने धर्मात्मा पिता कहोल नामक ब्राह्मण को तार दिया था, वैसे ही तुम जैसे महात्मा पुत्र ने मेरा उद्धार कर दिया।'')

अष्टावक्र की कथा को व्याख्यायित करने के लिए यही श्लोक बहुत पर्याप्त है। इस कथा का विस्तार महर्षि वेदव्यास ने किया। महाभारत के वनपर्व में 'कपट द्यूत' में हारकर वनवास भुगत रहे पाण्डवों को तीर्थयात्रा क्रम में महर्षि लोमश के दर्शन हुए। महर्षि लोमश ने युधिष्ठिर को सम्बोधित करके कहा, राजन्! यह समंगा नदी देख रहे हो! इसी में स्नान करके अष्टावक्र विकलांगता जैसे अभिशाप से मुक्त होकर दिव्य काया सम्पन्न सकलांग हो गए थे। धर्मराज की जिज्ञासा पर 'लोमश जी' ने कहा – छान्दोग्य उपनिषद् में प्रसिद्ध महर्षि उद्दालक वैदिक धर्म का पालन करते हुए विद्यार्थियों के अध्यापन में लगे रहते थे। उनके विद्यार्थियों में कहोल नामक

विद्यार्थी अत्यन्त मेधावी गुरुभक्त शास्त्रव्यसनी तथा कुशाग्र बुद्धि सम्पन्न था। महर्षि उद्दालक स्वयं उससे बहुत स्नेह करते थे। दैवयोग से उद्दालक की पुत्री सुजाता कहोल के ही समवयस्क थी। कहोल की शास्त्रनिष्ठा और धर्मपरायणता पर प्रसन्न होकर महर्षि उद्दालक ने अपनी पुत्री सुजाता का कहोल के साथ ही ब्रह्म विवाह कर दिया। कहोल ने भी गुरूर्राज्ञा गरीयसी की दृष्टि से सुजाता को स्वीकारा और वे गृहस्थाश्रमी बनकर एक वन में पर्णकुटी बनाकर उसीके साथ निवास करते हुए ब्राह्मणोचित कर्म में तत्पर हो गए। कतिपय वर्षों के पश्चात् सुजाता गर्भवती हुई। उनके गर्भ में पल रहे अर्भक अष्टावक्र परमेश्वर की तेजस्विनी विभूति से सम्पन्न होने के कारण स्वतःसिद्ध ज्ञानवान हो चुके थे। रात्रि में जब कहोल आगामी पाठ का अभ्यास करते-करते थक जाते थे तो बार-बार उसी पाठ को अपने मन मे बिठाते थे, जिससे वे वटुओं को संतुष्ट कर सकें। उनका यह क्रम देखते-देखते एक दिन ऊबकर अर्भक अष्टावक्र उत्तेजित हो गए और पिताश्री का प्रतिरोध करते हुए बोले, भगवन्! आप बार-बार श्रुति मंत्रों की आवृत्ति करके भी शुद्ध उच्चारण नहीं कर पा रहे हैं और न्यूनातिन्यून आठ-आठ अशुद्धियाँ आप प्रत्येक मंत्र में कर रहे हैं अर्थात् वेद पाठ की जटा, शिखा, माला, रेखा, ध्वज, दण्ड, रथ और घन मे आठों विकृतियाँ आपको अशुद्ध रूप में अभ्यस्त हैं। कृपया इन्हें शुद्ध कर लें, विद्यार्थियों को अशुद्ध पाठ न पढ़ाएँ। इस पर क्रुध होकर महर्षि कहोल ने शाप देते हुए बालक अष्टावक्र से कहा कि तुमने मेरी आठ अशुद्धियाँ निकाली हैं जाओ तुम्हारे आठों अङ्ग अभी से टेढ़े हो जाएँगे और तुम अष्टवक्र (टेढ़े) होकर ही जन्मोगे। शाप के कारण गर्भस्थ बालक आठ अङ्गों से टेढ़ा हो गया। इधर दुर्भिक्ष से पीड़ित होकर गर्भिणी सुजाता ने अपने पति महर्षि कहोल को धन प्राप्त करने के लिए योगिराज जनक जी के यहाँ हठात् भेजा। संयोग

से जनकराज के बंदी ने कहोल को शास्त्रार्थ में पराजित कर समुद्र में डुबो दिया। चिरप्रतीक्षा के पश्चात् भी जब कहोल ऋषि आश्रम को नहीं लौटे तब महर्षि उद्दालक ने बेटी सुजाता को उसके पति की दुर्दशा से अवगत कराया। यह भी निर्देश दिया कि सुजाता यह घटना अपने जन्म लेने वाले पुत्र से गोपनीय रखेगी। कुछ समय के पश्चात् सुजाता ने आठ अङ्गों से टेढ़े बालक को जन्म दिया और उसका नाम अष्टावक्र रखा। उन्हीं दिनों महर्षि उद्दालक के यहाँ भी पुत्र ने जन्म लिया। उद्दालक ने अपने पुत्र का नाम श्वेतकेतु रखा। श्वेतकेतु और अष्टावक्र दोनो मामा-भांजे अपना सम्पूर्ण पठन-पाठन एक साथ किया करते थे।

अष्टावक्र श्वेतकेतु को अपना भाई मानते थे परन्तु श्वेतकेतु उन्हें अपनी बहन का बेटा अर्थात् भांजा मानते थे। एकदिन अष्टावक्र को गोद में लेकर उद्दालक बहुत दुलार कर रहे थे। उन्हे देखकर श्वेतकेतु के मन में बहुत ईर्ष्या हुई और उन्होंने अष्टावक्र को यह कहते हुए अपमानित किया कि उद्दालक तुम्हारे पिता नहीं हैं। तुम उनकी गोद से उतर जाओ। श्वेतकेतु से इस प्रकार अपमानित होकर अष्टावक्र अपनी माँ सुजाता के पास आए और उनसे पिता की सम्पूर्ण परिस्थिति जानकर अपने मामा श्वेतकेतु को साथ लेकर पिता कहोल को राजा जनक के बन्दी से मुक्त कराने के लिए मिथिलापुरी गए। वहाँ अष्टावक्र ने क्रम से जनक, द्वारपाल तथा बन्दी को शास्त्रार्थ में परास्त किया और अपने पिताश्री को बन्दी से मुक्त करके आश्रम ले आए। महर्षि कहोल ने अपने द्वारा अभिशप्त पुत्र को समंगा नदी में स्नान कराकर अपने तपोबल से शापमुक्त कर दिया। अब अष्टावक्र सकलांग हो गए। अष्टावक्र विकलांगों के पुरोधा बनकर ऋषियों के मध्य पूजित हुए और अन्ततोगत्वा भगवान् श्रीराम के श्री अवध के सिंहासन पर आरूढ़ होने के अनन्तर वसिष्ठ जी की प्रेरणा से महर्षि

अष्टावक्र श्री अवध राजभवन में पधारे और वहाँ श्रीसीतारामजी से राजसम्मान प्राप्तकर कृतकृत्य और धन्य-धन्य हुए।

वस्तुतः अष्टावक्र की कथावस्तु संघर्ष से उत्कर्ष प्राप्ति की कथा है। असम्भव को सम्भव कर देने की युयुत्सा है। विकलांगों के लिए प्रेरणा, समाज के उत्तार-चढ़ावों की चित्रमाला और मनोवैचारिक संक्रान्ति का श्वेतपत्र है।

जगद्‌गुरु रामानन्दाचार्य
स्वामी रामभद्राचार्य

अष्टावक्र महाकाव्य – अनुक्रमणिका

।। नमो राघवाय ।।

अष्टावक्र महाकाव्य-प्रथम सर्ग

“संभव”

प्रथम सर्ग-संभव

॥ १ ॥

सीतारामकृपाविग्रहिणी भारत भारति सरस्वती
मेरे शुचि मानस मराल पर सुखासीन हो विभावती ।
किस अपूर्व महनीय काव्य में बना रही हैं मुझे निमित्त
किसके लिए स्वयं करुणा कर वितर रही हैं मतिमय वित्त ॥

॥ २ ॥

अगजग जननि कृपा कर मेरी प्रथम प्रणति तति स्वीकारें
तदनन्तर मेरे वर्णन हित विषय वस्तु भी निर्धारें ।
समझ निसर्ग सर्ग मेरा श्रीरामचन्द्र गुणचन्द्र चकोर
तदनुरूप निर्देश करें माँ करूँ सरल कविकर्म कठोर ॥

॥ ३ ॥

वासुमतेयी तात सभा ने जिन्हें सभाजित कर सानन्द
अपना भूरि भाग्य माना लेकर जिनका पदपाथस्यन्द ।
जनक सभा में उमड़ पड़ा जिनका विज्ञान महा कूपार
जिसमें मग्न हुआ क्षणभर में बुधमानी भूसुर परिवार ॥

॥ ४ ॥

नहीं पा सका पार वरुणसुत भी जिस गुण वरुणालय का
हुए पण्डितं मन्य धन्य अर्चन कर जिस करुणालय का ।
ब्राह्मण बन्दी छोड़ बन गया जो संविदित विबुधबन्दी
विकलांगों का बना पुरोधा दृश्यकाव्य का जो नान्दी ॥

॥ ५ ॥

विकलांगों के गव्य बन गए जीवन पथ में जिसके सर्ग
महाकाव्य के सर्ग बन गए जिसके आठों निचित निसर्ग ।
वही बनें इस महाकाव्य का वर्ण्य वर्णिवर अष्टावक्र
सरस्वती की यही प्रेरणा मुझे मिल रही आज अवक्र ॥

॥ ६ ॥

छान्दोग्योपनिषद् प्रसिद्ध वैदिक ऋषि थे श्रीउद्दालक
श्रौत स्मार्त कर्मविधि के जो यथाशास्त्र थे परिपालक ।
जिनकी मखवेदी वैश्वानर से रहती थी कभी न रिक्त
जिनकी समिधा सदा विलसती सुरभि-सुरभि सर्पिष से सिक्त ॥

॥ ७ ॥

जिनकी रसना पर रस लेते सदा विहरते चारों वेद
अष्ट विकृति त्रयप्रकृति थिरकती जिनके मुख पर सतत अखेद ।
विबुधवृन्द वरणीय वर्णिवर पाकर जिनका ज्ञानप्रसाद
हो विद्याविनीत हँसते थे सुरगुरु को भी विगत विषाद ॥

॥ ८ ॥

बन द्विजर्षि उद्दालक कुलपति अयुत वर्णियों का पोषण
करते अन्नज्ञान वितरण से सदा समलनिधि का शोषण ।
निर्जरगवी व्यवस्था करती सन्तत उनके आश्रम की
नहीं स्वप्न में भी छू पाती उनको छाया भव भ्रम की ॥

॥ ९ ॥

सहधर्मिणी ब्राह्मणी मान्या पतिव्रता उद्दालक की
निष्किञ्चना धर्मपत्नी थी सुमति शास्त्र संभालक की।
मनोरमा कुलवती सुशीला श्रद्धेया द्विजभार्या थी
श्रीहरिभक्ता विषयविरक्ता स्त्रीललाम वह आर्या थी ॥

॥ १० ॥

उसके मानस मानस में न विषम कभी शर करट आया
सदा रही पाटीर व्रतति सी उसकी शुचि सुरभित काया ।
रघुवर ध्यानमग्न रहती नक्तंदिव दिविज महित महिला
निरग्रहा निजवरानुग्रहा गुणाग्रहा सद्ग्रह ग्रहिला ॥

॥ ११ ॥

दम्पति संप्रयोग रसपति से दिव्यसुता का जन्म हुआ
नाम सुजाता जिस जाता ने निज गरिमा से व्योम छुआ ।
यही बनेगी अष्टावक्र सरीखे सुत की शुचि माता
धन्य सुजाता उद्दालकजाता त्रिभुवन में विख्याता ॥

॥ १२ ॥

बजी बधाई ऋषि आश्रम में सुरललना मङ्गल गाई
नन्दन कुसुम वृष्टि द्वारा द्यौदेवि दिव्यता भी लाई ।
शतसुत सभा सुता मेरी है ऋषिपुङ्गव यह निश्चय कर
किये महोत्सव दुहितृजन्म में दिये दान धन धान्य प्रचुर ॥

॥ १३ ॥

ऋषि का उर सोत्साह हो गया मानस में मुदिता छाई
मनो ब्रह्मविद्या प्रयत्न कर मुदित मुमुक्षु ने पाई ।
मिली समाधि योगिपुङ्गव को साधक ने साधना लही
जगी विवित्सा विद्यार्थी में हुई महोत्सव महित मही ॥

॥ १४ ॥

दंपति वत्सल रस आलम्बन बनकर संयम संभृति सी
सोह रही मन मोह रही थी कन्या भारत संस्कृति सी ।
उद्दालक प्रतीत परमिति सी संस्कृति लक्ष्मण रेखा सी
उटज मध्य वह सुता पल रही शुक्लपक्ष शशि लेखा सी ॥

॥ १५ ॥

ऋषिपत्नी स्तनपान करा कर स्निग्ध सुता को पाल रही
पलक पालने पर पौढ़ाकर ललित लाड़ली लाल रही ।
चूम-चूम मुख झूम-झूम कर सुता गोद लेकर फिरतीं
भारत भाग्य विभव गरिमा को अङ्क लिये भव भय हरतीं ॥

॥ १६ ॥

उद्दालक उदात्त गुणगण से पुत्री का मानस भरते
संस्कारों की सुभग सुधा से पुष्ट उसे सन्तत करते ।
शैशव में ही खेल खेलकर बैठ पिता के पावन अङ्क
उपनिषदों का मर्म सुजाता सीख रही अनुपम अकलङ्क ॥

॥ १७ ॥

मुनितनयों के साथ खेलती मान उन्हें अपना भ्राता
सुता सुजाता जात गुणगणा पावन सुरसरि सी ख्याता ।
श्रुतियों का सिद्धान्त समझती खेल खेल में मुनिकन्या
सात्विकता की मूर्ति बन गई प्रतिभा प्रतिमा धनधन्या ॥

॥ १८ ॥

हरिणसुताओं को हरिणाक्षी हरिलीला सिखलाती थी
हंसगामिनी हंससुताओं को भी हरि दिखलाती थी ।
कानन को अकलङ्क कर रही विमल चरित से विप्रसुता
पूत पवन को भी करती थी पूतनयन से नयन नुता ॥

॥ १९ ॥

माता पिता मुदित रहते थे देख सुता का पावन कृत्य
सभी ब्रह्मचारी करते थे पूज्य स्वसा का वन्दन नित्य ।
रूढ़ यौवना होकर भी उच्छृङ्खलता से दूर रही
उद्दालक की सुता सुजाता कलित कीर्ति से पूर रही ॥

॥ २० ॥

उसके श्रवणों में लसते थे कर्णिकार के सुन्दर फूल
मानों युगगुरु चूम रहे थे पावन पाटल दल को झूल ।
विमल बोध की दीपशिखा सी ज्योतिर्मय करती वन को
प्रकृति सुन्दरी की सुषमा सी सुभग कर रही कानन को ॥

॥ २१ ॥

उद्दालक के शिष्य प्रसिद्ध एक था जिनका नाम कहोल
ब्रह्मचारी पुङ्गव जित दशगव भव-भव महिसुर महित महोल ।
रौरव सहित रहित रौरव से रौरवकृत जित रौरव थे
गौरवमय अभिमान विवर्जित श्रितगौरव हित गौरव थे ॥

॥ २२ ॥

उठ़ निशीथिनी तूर्य याम में करके नित्य कृत्य सन्ध्यान
निष्प्रमाद होकर करते थे उद्‌गीथों का सस्वर गान ।
निष्कश्मल वासना रहित मन अष्टव्यवाय रहित था स्वान्त
स्ववश हृषीक कुरङ्गम दुर्गम थे अभ्यस्त शास्त्र अक्लान्त ॥

॥ २३ ॥

छन्दअयात याम थे उनके तदपि नहीं मानस स्वच्छन्द
विगत रन्ध्र नीरन्ध्र नयन से उमड़ रहा तैजस निस्पन्द ।
उन्नत मसृण कपोल युगल पर तेज थिरकता अरुण विराट
थे अपाङ्ग कुछ शोण कोण दृग चन्दन चर्चित ललित ललाट ॥

॥ २४ ॥

शुक्ल-शुक्ल अविरल दन्तों पर मोह रही मचली चपला
किं वा शरच्चन्द्रिका चमचम चमक रही पाटलस्थला ।
पिङ्ग-पिङ्ग उत्तुङ्ग जटायें उमग चूमतीं अरुण कपोल
अपसारण में उनके होते कभी-कभी द्विज कररुह लोल ॥

।। २५ ।।

पार्वण सुधा मयूख विनिन्दक वर्णिवर्य का मन्दस्मित
उनके ही सतीर्थ्य निकरों का करता रहता मन विस्मित ।
एकश्रुत विश्रुत वर्णी की निष्कैतव आनन आभा
अधरीभूत अधर से करती कोटि–कोटि उडुपति शोभा ॥

।। २६ ।।

उनके कर करङ्क में लसती वाह्निहोत्रि की समित कुशा
जिसे निरख सकुचा जाती थी माध्वीमय माधवी उषा ।
विधिवत करते थे कहोल श्रद्धा से देशिक परिचर्या
निष्प्रमाद शुचि निर्विवाद थी वटुतल्लज की दिनचर्या ॥

॥ २७ ॥

अष्टादश विद्यायें बटु की मतिरसना पर नचती थीं
नये–नये उल्लास शान्तिमय सुभग स्वान्त में रचती थीं ।
चतुर्वेद वेदाङ्ग गुहानन धर्मशास्त्र गौतम विद्या
मेधा की सहचरी बन गई युगमीमांसा निरवद्या ॥

।। २८ ।।

आन्वीक्षिकी त्रयीवार्ता औ दण्डनी ती की परिभाषा
परिभाषित हो गई विप्र को भिक्षुसूत्र की संभाषा ।
अनायास सुप्रकाश हो गये धर्मशास्त्र के गूढ़ रहस्य
वैदिक वाङ्मय के कृतान्त सब मनः सदन के बने सदस्य ॥

।। २९ ।।

पौराणिक सिद्धान्त विप्र की मति रमणी के बने ललाम
स्फुरित हो उठे हृदय गगन में रामचन्द्र के सदगुण ग्राम ।
रामायण शतकोटि बन गये मुनिमानस के मंजुल हंस
लगे थिरकने हृदय विपिन में अजनन्दन बालकावतंस ॥

।। ३० ।।

नक्तंदिव रह निष्प्रमाद प्रणिपात प्रश्न गुरु शुश्रूषा
करते हुए कहोल पा गये विद्याद्वयी हृदय भूषा ।
विद्या विनय विनीत हो गये ऋषि कहोल वाङ्मय निष्णात
उपकुर्वाण उन्हें होना है कतिपय दिवसों में सुस्नात ॥

।। ३१ ।।

गुरु ने गौरव को गौरव से गौरवमय उपदेश दिया
समावृत्ति के हेतु शिष्य को निरातंक निर्देश दिया ।
भरे सलिल राजीवनयन में उद्दालक ऋषिवर बोले
बिठा अङ्क में बटु कहोल को मन में स्नेह अमिय घोले ॥

।। ३२ ।।

वत्स कहोल समावर्तन हित सत्वर हो जाओ प्रस्तुत
ज्यौं विनियोग हेतु मन्त्रों के सतत सलिल होता संस्तुत ।
किसी सवर्णा विप्रसुता का जाकर पाणिग्रहण करो
वर्णाश्रम परम्परा सौरभ रस से भारत विपिन भरो ॥

।। ३३ ।।

किन्तु वही सहचरी तुम्हारी बने वत्स ब्राह्मणकन्या
जिसके रोम रोम में रमती हो वैदिक संस्कृति धन्या ।
जिसका मानस नीलकण्ठ रघुवर जलधर में रमता हो
जिसका चेतश्चञ्चरीक चम्पा से सदा विरमता हो ॥

।। ३४ ।।

जिसका निर्विकार मानस विकलांग समर्चा में रत हो
असहायों की जटिल समस्या समाधान जिसका व्रत हो ।
समानुभूति समा संवित् हो विकलांगों के प्रति जिसकी
भववासना विवर्जित भी हो श्रीराघव में रति जिसकी ॥

।। ३५ ।।

जो न मानती हो किञ्चित भी रामराष्ट्र में भेद कभी
जो न जानती हो निज पर आत्मज में किमपि विभेद कभी ।
कवि निगदित वसु दुर्गुण रहिता वही तुम्हारी हो भार्या
वही तुम्हारी गृहलक्ष्मी हो शुभ गुण सम्पन्ना आर्या ॥

।। ३६ ।।

वत्स, भोग का साधन क्या वेदों ने माना पत्नी को
क्या श्रुतियों ने कहा कुसन्तति जननी अन्तर्वत्नी को ।
नहीं वासना पर्यवसायी सुत, पत्नी का करग्रहण
नहीं बुभुक्षा का उद्दीपन शुचि ललना का अलंकरण ॥

।। ३७ ।।

भारतीय नारी का चरणामृत परमेश्वर लेते हैं ।
भारतनारी को ही श्रीहरि स्वीय मातृपद देते हैं ॥
भारतनारी के ही अञ्चल में करते हैं प्रभु पयपान ।
भारतनारी के दृगश्रुओं से करते हैं श्रद्धास्नान ॥

।। ३८ ।।

तब तक पुरुष परुष बनकर पुरुषार्थहीन हो रोएगा ।
तब तक निजस्वरूप विस्मृत कर मोहनिशा में सोएगा ॥
जब तक नारी को समझेगा कामतृप्ति का वह साधन ।
जब तक मानेगा स्त्री को निज नीच विलासों का वह धन ॥

।। ३९ ।।

वत्स, कहोल धर्मपत्नी ही एक मनोहर मन्दिर है ।
जहाँ पुरुष संकल्प शुद्ध कर बनता भवनिधि मन्दर है ॥
पत्नी एक शक्ति है जिसके सम्बल से स्मररिपुर को जीत ।
बना गृहस्थ पिता हरि का भी जगद्वन्द्य निरवद्य अभीत ॥

।। ४० ।।

अतः किसी सुयोग्य ब्राह्मणकन्या को तुम अपनाओ ।
जिसका ले सहयोग वत्स भवसागर से भी तर जाओ ॥
यौं कहते-कहते उद्दालक भावविकल हो गए तरल ।
बटु कहोल के युगल नयन भी करुणा से हो गए सजल ॥

॥ ४१ ॥

कलिल कठोर धर्म संकटमय ऋषि कहोल मन मध्य लसा ।
उसमें उनका वर विवेक कुम्भीश निरीश निरीह फँसा ॥
कर–करके भी यत्न अपरिमित जब वह नहीं निकल पाया ।
तब तो हो निरुपाय निराश्रय धैर्य त्यागकर घबराया ॥

॥ ४२ ॥

चिन्ता नीहारिका जड़ीकृत ज्ञान भानु दीधिति विरसी ।
केवल व्याकुलता कैरविणी मन छाया पथ में विलसी ॥
कुछ न सोच पाए कहोल लज्जा से लोचन नमित हुए ।
किंकर्तव्यविमोहदात्र से गात्र विप्र के दमित हुए ॥

॥ ४३ ॥

पाऊँ कहाँ गृहिणी वैसी गुरु ने यथा निर्दिष्ट किया ।
अरे विधाता नरकोन्मुख हित चिन्तामणि आदिष्ट किया ॥
कहाँ सुलभ उसको सुरभीपय तरस रहा जो मट्ठे को ।
कैसे वह सुरतए अधिकारी सिहक रहा जो गट्ठे को ॥

॥ ४४ ॥

यदि ऐसी गृहिणी न मिली तो आजीवन बटु रह लूँगा ।
गुरुविरुद्ध दारिका न लूँगा ब्रह्मचर्य तप सह लूँगा ॥
तिल तिलकर जीवन हुन दूँगा पर यह अघ न करूँगा मैं ।
गुरुप्रतिकूल कदाचारी बन कैसे जन्म भरूँगा मैं ॥

।। ४५ ।।

भलीभाँति जानता जगत है मैं उद्दालक का बटु हूँ ।
मुझ पर गुरु की कृपा अमित है मैं देशिक सेवा पटु हूँ ॥
क्या शंकर को चन्द्र दुखी कर रोहिणी अंगीकार करे ।
सुरसरि के प्रतिकूल कर्मनाशा को क्यों जग शीश धरे ॥

।। ४६ ।।

नहीं चाहिए वह विवाह जिससे गुरु उर में दाह जगे ।
धिक्धिक् उस पार्वणी निशा को जिसमें विधु को ग्रहण लगे ॥
उस अमरित का कौन काम जो कामेश्वर को विष देवे ।
कौन उपेक्षा कर सुरभी की दुष्ट रासभि को सेवे ॥

।। ४७ ।।

जैसी पत्नी गुरुनिर्दिष्ट है वह तो प्राप्त न हो सकती ।
कभी नहीं कासार पङ्क में विमल कमलिनी सो सकती ॥
यह असार संसार कहाँ से सार भूतनिधि पाएगा ।
किस प्रकार निर्दिष्ट गुणलसित ललना को जन्माएगा ॥

।। ४८ ।।

सुना यही प्रत्येक नियम का होता है कोई अपवाद ।
इसी मान्यता से मिटता है मानव मन का विषम विषाद ॥
इस असार संसार मध्य भी एक सृष्टि है सारवती ।
प्रकट हुई गुरु सुता रूप में नाम सुजाता मञ्जुमती ॥

॥ ४६ ॥

पर वह मेरी गुरु भगिनी है पूज्यभाव उस पर मेरा ।
कभी न पत्नीत्वेन भजूँगा मन स्वभाव जित्वर मेरा ॥
कच जैसा मेरा दृढ निश्चय सर्वत्याग को प्रस्तुत है ।
नहीं सुजाता देवयानी सी श्वसा सुरवधू संस्तुत है ॥

॥ ५० ॥

अथवा गुरु आज्ञा प्रमाण है व्यर्थ कल्पना है मेरी ।
गुरु इच्छा पर सर्वस अर्पित व्यर्थ जल्पना है मेरी ॥
गुरवे स्वाहा असनवसन धन प्राण बुद्धि मन सब अर्पण ।
गुरु इच्छा में इच्छा मेरी गुरवे स्वाहा यह जीवन ॥

॥ ५१ ॥

ऋषिवर समझ गये कहोल का तत्क्षण मर्म धर्मसंकट
बोले गद्गद वचन पुलक तन बिठा शिष्य को परम निकट ।
चूम मुखाम्बुज सूँघ माथ करपंकज परस सरस शिर पर
आश्वासन के स्वर में बोले उद्दालक सुनेह निर्भर ॥

॥ ५२ ॥

समझ गया कहोल तेरा मैं धर्मशास्त्र सम्मत मानस
धन्य तुम्हारी परवशता यह अहो तुम्हारा असमंजस ।
तुमने भारतीय संस्कृति को है अनुपम आदर्श दिया
तुमने गुरुकुल परंपरा का अनुपमेय उत्कर्ष किया ॥

।। ५३ ।।

तुमने निर्व्यलीक मन से माना है वैदिक अनुशासन
इसीलिये अब नमन करेंगे तुमको स्वयं नमुचि शासन ।
तुमने भावी युवावर्ग को मंगलमय सन्देश दिया
है चरित्र सर्वस्व युवक का यह निरुपम निर्देश किया ॥

।। ५४ ।।

यावच्चन्द्र दिवाकर जग में कीर्ति तुम्हारी अमर रहे
यावत् सृष्टि-दृष्टि भवदीया साधन मग में अजर रहे ।
वत्स आर्ष आगम में मेरा यह नवीन अनुभव होगा
होगा जग का भग्न पराभव सोमलग्न संभव होगा ॥

।। ५५ ।।

अब नवल हो सर्ग सर्जन, अब न बल हो मलोत्सर्जन ।
नवल भारत नवल भारत श्रुति विभाजन सुख अनारत
प्रेय वर्जित श्रेय सन्तत शान्तिमय अपवर्ग अर्जन । अब०

नवल क्रान्तिमयी दिशायें नवल शान्ति नयी दशायें ।
नवल मधुराका निशायें नवल हो उत्सर्ग अर्जन ॥ अब0

नवल हो इतिहास अनुपम नवल काव्य विलास विभ्रम ।
नवल गीतोल्लास निरुपम नवल भर्ग विभर्ग भर्जन ॥ अब0

नवल रङ्ग तरङ्ग चिन्तन नवल छन्द प्रबन्ध नूतन ।
नवल कविता नवल कीर्तन नवल सुप्रणय भय विसर्जन ॥ अब0

।। ५६ ।।

मैं भी पड़ा धर्मसङ्कट में आयुष्मन् था तुमसे पूर्व
बिलो रहा था मेरे मन को अद्यावधि यह द्वन्द्व अपूर्व ।
जब से सुता सुजाता जनमी तब से ही यह मेरा मन
वैचारिक द्वन्द्वों में जकड़ा करता रहता सतत मनन ॥

।। ५७ ।।

क्या पुत्री है भार पिता का नहीं जनक का यह भूषण
यदि हो सके शास्त्र पद्धति से इसका पालन निर्दूषण ।
शत पुत्रों से श्रेष्ठ सुता यदि शुद्धपात्र को हो यह देय
सामश्रुति भी धन्य वही है जो हो शुद्ध स्वरों में गेय ॥

।। ५८ ।।

कन्या नहीं भार है शिर का यही सृष्टि का है शृङ्गार
मानवता का यही मन्त्र है यही प्रकृति का है उपहार ।
कोख पवित्र सुता से होती पुत्री से गृह होता शुद्ध
नहीं भ्रूणहत्या विधेय है श्रुतिविरुद्ध यह कृत्य अशुद्ध ॥

।। ५९ ।।

भगवद्भक्त भली है पुत्री हरिपद विमुख अधम है पूत
शबरी तरी राम को भजकर बना धुन्धुकारी ही भूत ।
किसने देखा कहो सुता को जननि जनक ताड़न करते
देखे शतशः पुत्र जगत में मातु पिता जीवन हरते ॥

।। ६० ।।

जहाँ एकतः प्रिया गिरा से सुत की बुद्धि फिरी देखी
वहीं दूसरी ओर पतिवचन तोड़ सुता सुस्थिर पेखी ।
पुत्र प्रायशः प्रिया प्रेमवश मातु पिता से होता दूर
पुत्री पतिगृह जाकर भी रहती है जनक जननी रति पूर ॥

।। ६१ ।।

अतः कहोल दे रहा तुमको मैं निजसुता सुजाता को
भारतीय वैदिक संस्कृति की प्रतिमा जग विख्याता जो ।
तुम इसके अनुरूप तथा यह त्वदनुरूपवर नारी है
तुम्हीं प्राणवल्लभ इसके हो यह गेहिनी तुम्हारी है॥

।। ६२ ।।

अरुन्धती श्रीवसिष्ठ जैसा यह दाम्पत्य अमर होगा
गङ्गा सरयू के प्रवाह सा सरस सोम निर्भर होगा ।
तुम हो निष्कलंक संयम यदि यह भी शान्ति प्रतिष्ठा है
तुम हो निर्विवाद मुनिव्रत यदि यह भी सात्विक निष्ठा है ॥

।। ६३ ।।

जामाता यद्यपि दशम ग्रह पर तुम दशमानुग्रह हो
निग्रह हो विधर्म भावों के श्रौतधर्म के विग्रह हो ।
इसी लिये विचार कर मैंने तुम्हें बनाया जामाता
तुम्हें सुजाता सुता सौंप दी बनो ब्रह्मकुल के त्राता ॥

।। ६४ ।।

जैसे तुमने वत्स धर्मसङ्कट से मुझको मुक्त किया
मेरी इच्छा मान निजेच्छा निज को बन्धन युक्त किया ।
उसी प्रकार करेंगे श्रीहरि भवसंकट से मुक्त तुम्हें
भारतीय इतिहास करेगा विमल विरुद से युक्त तुम्हें ॥

।। ६५ ।।

वत्स सुजाता में तुम ऐसा पुत्ररत्न प्रगटाओगे
जिससे अमित कोटि कल्पनाप्लुत विमल यशश्री पाओगे ।
बन्दी बन जाएगा तेरा भारतीय वैदिक इतिहास
कभी न कोई कहीं करेगा सुत कहोल तेरा उपहास ॥

।। ६६ ।।

पारिवर्ह बस यही दे रहा उद्दालक तुमको अवदात
सीतापति के अर्चित ऋषि के बनो दम्पति जननी तात ।
विकलांगों का बने पुरोधा नवदम्पति से प्रगटा पुत्र
वही बने विकलांग समस्या समाधान का शाश्वत सूत्र ॥

।। ६७ ।।

उससे पा कर्तव्य प्रेरणा जग में अधिकृत हो विकलांग
सफल बनेंगे स्पर्धा में विवश करेंगे सब सकलांग ।
विकलांगों को सभी मिलेंगे अब मौलिक मानवाधिकार
अब सकलांग न दे पाएगा विकलांगों को कटु धिक्कार ॥

।। ६८ ।।

अब न निजी अधिकारों से विकलांग रहेगा परिवंचित
अब विकलांग न ताडित होगा उसे मिलेंगे शुभ संचित ।
अब प्रत्येक सुमङ्गल में विकलांग बनेगा सहभागी
अब विकलांग करेगा कृति से सकलांगों को बड़भागी ॥

।। ६९ ।।

पुत्र तुम्हारा विकलांगों का होगा परम प्रेरणास्रोत
इसे देख कर्मठ होवेंगे अङ्गहीन कर कर्मोद्योत ।
अब विकलांग न अपशकुनों का कभी रहेगा प्रस्तोता
सकलांगों के भी शकुनों का वही बनेगा संस्तोता ॥

।। ७० ।।

उद्घाटन विकलांग करेगा सभी मङ्गलों का अब से
उद्घोषक विकलांग बनेगा सभी शुभ फलों का अब से ।
विकलांगों को सहज मिलेंगी अब से सभी प्रतिष्ठाएँ
विकलांगों का चरण समर्चन सभी करेंगी निष्ठाएँ ॥

।। ७१ ।।

यों कह पुत्री का कहोल से करके विधिवत ब्राह्मविवाह
उद्दालक ने सुता सौंप दी द्विज कहोल को कलितोत्साह ।
चली सुजाता स्वजन संग अब करके जननि जनक वन्दन
नन्दन कुसुमों से स्वर्गिणियाँ मुदित कर रहीं अभिनन्दन ॥

।। ७२ ।।

अब कहोल ने कुटी बनाई नीरव निर्जन कानन में
किया निवास वहीं गृहस्थ ने भार्या सहित मुदित मन में ।
वास्तु देवता का कर पूजन अग्निहोत्र को कर स्थापित
रहने लगे गृहस्थ धर्मरत कर दोषों को विस्थापित ॥

।। ७३ ।।

ब्रह्मविहित षट्कर्म निरत ऋषि निष्प्रमाद वैदिक शासन
सावधान संयत हो करते आचार्यों का अनुशासन ।
पंचयज्ञ बलिवैश्वदेव कर यादृक्षिक उपलब्ध अशन
निराबाध विगतापराध मुनिभूषण वल्कल विमल वसन ॥

।। ७४ ।।

आते वहाँ सभी आशाओं से आशाप्त ब्रह्मचारी
पाते अष्टादश विद्याओं के रहस्य शुचि अधिकारी ।
सभी छात्र-छात्रा ऋषिवर के पास अधीति रहते थे
द्विज कहोल के बोध वारिनिधि लहरों का सुख लहते थे ॥

।। ७५ ।।

यजन और याजन श्रुतिमख का श्रुति का अध्ययनाध्यापन
दान परिग्रह कर्म विप्र का करते सदा यथा स्थापन ।
शङ्काओं के समाधान में सावधान रहती प्रज्ञा
कभी न हो पाई कहोल की मति शास्त्रों में अनभिज्ञा ॥

।। ७६ ।।

ऋषिकन्याएँ भी आश्रम में सात्विकता से रहती थीं
उच्छृङ्खलता से विरहित हो ब्रह्मव्रत निरवहती थीं ।
कभी न उनके यौवन वन में पंचशरासुर आ पाया
कभी न उनकी डसी गई वासना भुजङ्गिन से काया ॥

।। ७७ ।।

तापस कन्याएँ भी मान सुजाता को श्रीगुरुमाता
करती थीं शुश्रूषा गृह की नमित विलोचन जलजाता ।
सभी ब्रह्मचारी मुनिकन्याओं को भगिनी ज्यों लखते
उनसे वे भ्रातृत्व भाव का मङ्गलमय मोदक चखते ॥

।। ७८ ।।

मुनियों की दुहिताएँ ऋषि कहोल की शुभ सन्निधि पाकर
उनसे वैदिक मर्म सीखतीं सात्विक जीवन अपनाकर ।
रात्रिन्दिव महि दिविज विपिन में एकमात्र निर्दोष व्यसन
श्रुतिसिद्धान्त पठनपाठन शुचिकन्दमूल फलअमिय अशन ॥

॥ ७९ ।।

निर्विरोध निर्वैरविजनवन नहीं कहीं भी उत्पीड़न
नहीं कहीं आतंक नहीं भय नहीं भाव का सम्पीड़न ।
हरितक्रान्ति सर्वत्र शान्ति थी सभी अहिंसक थे वनचर
सिंह सखा था दन्तावल का अहि का नकुल बना भयहर ॥

।। ८० ।।

चारों वर्ण तथा चतुराश्रम यहाँ पा रहे सुखद शरण
एक मात्र था स्मरण राम का विस्मृत था भवभीममरण ।
लोकशरण्य अरण्य बना था नहीं कहीं भी था आमय
नहीं अविद्या मोहनिशा थी माया नहीं नहीं था भय ॥

।। ८१ ।।

विजन विपिन निर्मित कुटीर में सुस्थिर मन रहकर चुपचाप
करती सभी सुजाता पति के दैनन्दिन शुचिकार्य कलाप ।
प्रातस्तवन कर नित्य नियम वह अग्निहोत्र हित समित् कुशा
प्रस्तुत करतीं अतिसतर्क हो यथा अरुण के पूर्व उषा ॥

।। ८२ ।।

गोमय से संल्लिप्त द्वार कर स्वयं सींचती नव तुलसी
परिमार्जित भाजन कर शुचिता परिमिति रखती हिय हुलसी ।
युगसन्ध्या में अग्निहोत्र के समय स्वयं समीप आती
दयित वामदिशि बैठ ब्राह्मणी ब्राह्मतेज से भर जाती ॥

।। ८३ ।।

मुनि बटुओं की स्वयं व्यवस्था कर मातृत्व निभाती थी
यथासमय वैदिक मन्त्रों के गूढ रहस्य सिखाती थी ।
इस प्रकार वह विपिन देवता आश्रम मध्य स्वर्ग लायी
निरख सुजाता भाग्य विभव को अमरावती भी ललचायी ॥

।। ८४ ।।

चान्द्रायणादि कठिन व्रतों को करने में न कभी थकती
ब्राह्मण गृहिणी समुचित विधि को कर कर वह सुख से छकती ।
नहीं अर्थ लोलुप वह महिला नहीं काम की दासी थी
नहीं तनिक थी विषय वासना श्रीहरिचरण उपासी थी ॥

।। ८५ ।।

यथा नाम थे तथैव सद्‌गुण आख्यालिलित सुजाता थी
इसीलिए शोभनजातक की वही भाविनी माता थी ।
सुभगो जातोयस्याः सैव सुजाता नाम निरुक्ति यही
अष्टावक्र सुभग जातक की बनी सुजाता मातु सही ॥

।। ८६ ।।

विपुल प्रतीक्षा निशा गयी अब ऐतिहियक आई ऊषा
उदित हुए अम्बर में ऐन्द्री शुभाभरण पूरण पूषा ।
तज तज निज निज नीड विहग गण जुड़ने लगे गगनपथ में
यथा मुमुक्षु वरूथ गृह विरत उड़ने लगे उडुप रथ में ॥

।। ८७ ।।

ऋषि कहोल भी व्यस्त हो गए दैनिक संध्या वन्दन में
सुरगण आज समस्त हो गए सुमन वृष्टि हित नन्दन में ।
रश्मिकेतु ने अरुणरश्मियों से रंगाकाष्ठानन को
मुनिवटुओं ने श्रुतिनिनाद से किया कलित स्वन कानन को ॥

।। ८८ ।।

तभी सुजाता पर्णपात्र ले कुटिया से बाहर आई
अर्घ्यदान कर चित्रभानु को भव्यभाव में पुलकाई ।
तुहिन तिमिर हरर्षित विधिहरिहर निरख भर्गवर सविता का
द्विज वनिता का मन भर आया यथा भाव नव कविता का ॥

।। ८६ ।।

लगी सोचने देवि सुजाता निजाभिधान निरुक्ति स्वयम्
पट्वी प्रतिभा पटु प्रज्ञा से परमपावनी युक्ति स्वयम् ।
अरे विधाता अब क्या तेरी बोल विचित्र विदित्सा है
इस अकिञ्चना मुनि पत्नी को कौन तुझे अब दित्सा है ॥

।। ६० ।।

यथा नाम यदि तथैव गुण हों लोक सूक्ति यह है ख्याता
तो फिर किसी सुभग जातक की बनी सुजाता भी माता ।
राम राम यह कैसा दुर्लभ मेरा मधुर मनोरथ है
छूने को साहस करती छोटी चींटी छाया पथ है ॥

।। ६१ ।।

कहाँ सुजाता की क्षमता है खर्व गर्भ में धारण की
विश्व विश्व विश्रुत विभूति को बड़ी बात साधारण की ।
किन्तु नहीं कुछ दुर्लभ उसको जिस पर हो सीतेश कृपा
चन्द्रचूड़ शिर चढ़े कुसुम संग लघु पिपीलिका निरातृपा ॥

।। ६२ ।।

हे अगजग के चक्षु दिवाकर इतनी कृपा आज करिये
विकलांगों की चिर विडम्बना हहर हेर हिय में हरिये ।
अंधबधिर अस्थीय मन्दमति विकलांगों के चार प्रकार
पूर्वजन्मकृत कुफल भोगते रहे विकल जीवन से हार ॥

।। ६३ ।।

इस विकलांग चतुष्टय की जो चार समस्या अत्रअमुत्र
चतुष्तेजमय मम गर्भस्थित दे दो समाधान के सूत्र ।
विधि हरिहर परमेश्वर तेजस् एक रूप बनकर आए
बने गर्भ अर्भक मेरा वह विकलांगों को अति भाए ॥

।। ६४ ।।

आप स्वयं ब्रह्माहरिहर हैं परब्रह्म हैं आप स्वयम्
आप स्वयं प्रकाश अगजग के वेदमर्म हैं आप स्वयम् ।
आप परम देवता द्विजों के मैं भी हूँ शुचि द्विज पत्नी
महष्च्चतुष्टय धरो गर्भ में होऊँ मैं अन्तर्वत्नी ॥

।। ६५ ।।

आप अलोचन के लोचन हों आप बधिर के श्रवण बनें
आप मूक की वाणी बनकर परमानन्द द्रवण बनें ।
आप बनें करकमल लुञ्ज के आप पंगु के बनें चरण
आप बुद्धि हों बुद्धिहीन के अस्थिहीन के अस्थिकरण ॥

।। ९६ ।।

ऐसा अर्भ गर्भ में मेरे देवकृपा से अब आए
जिसमें सभी समस्याओं का समाधान अगजग पाए ।
विकलांगों की सकल समस्या समाधान जिसमें दीखें
जिसका लख व्यक्तित्व अनुपम मानव मानवता सीखें ॥

।। ९७ ।।

एवमस्तु कह सूर्य देव तत्क्षण ही अन्तर्धान हुए
विकलांगों के लिए इधर कुछ नए नए आह्वान हुए ।
ऋषि दम्पति का निर्विकल्प संकल्प रंग नूतन लाया
महश्चतुष्टय देवि सुजाता का अर्भक बनकर आया ॥

।। ९८ ।।

अष्टावक्र विश्व विश्रुत जिसकी होगी वैदिक संज्ञा
विकलांगों के लिए सांत्वनादर्श मनोज्ञ प्रत्यभिज्ञा ।
पञ्चभूत मन बुद्धि अहं जिसके हित होंगे सदा अवक्र
वही सुजाता गर्भ बनेगा आगे चलकर अष्टावक्र ॥

।। ९९ ।।

अष्ट कुभोग अष्ट मैथुन भी नहीं करेंगे जिसको वक्र
सौजातेय वही भविष्य में बन जाएगा अष्टावक्र ।
अष्टलोकपालक सुरगण भी कर न सकेंगे जिसको वक्र
वही ऐतिहासिक कहोल सुत हो जाएगा अष्टावक्र ॥

।। १०० ।।

अष्टावसु जिस वसुन्धरा के वसु पर कभी न होंगे वक्र
वही सुजाता हर्ष विवर्धन विदित बनेगा अष्टावक्र ।
अष्टनाग कुल अष्टयाम में गाते जिसकी कीर्ति अवक्र
वही सुजाता गर्भ निवासी होगा गर्भक अष्टावक्र ॥

।। १०१ ।।

मञ्जु मनोरथ होती गुणवती ब्राह्मणवर्य धर्मपत्नी
पुष्पितकमन कल्पलतिका सी आज हुई अन्तर्वतनी ।
अपरोक्षानुभूति भूषित सुविभूति भूत भूमा चमका
देवि सुजाता का ललाट सुविराट दामिनी सा दमका ॥

।। १०२ ।।

ब्रह्मवर्चसी अर्भक का आश्रय है गर्भ सुजाता का
और हुआ कमनीय कान्तिमय कान्तालक विख्याता का ।
नहीं शिथिलता किसी अंग में नहीं मचलता मन उनका
नहीं प्रमीला विपिन भूमि में नहीं फिसलता तन उनका ॥

।। १०३ ।।

नहीं खेद प्रस्वेद वपुष में मुख पर नहीं उदासी थी
नहीं कपोलों पर पाण्डुरता नहीं भावना बासी थी ।
नहीं श्रान्ति थी नहीं क्लान्ति थी नहीं वासना थी उनमें
एकमात्र अभिराम राम की शुभोपासना थी उनमें ॥

॥ १०४ ॥

नहीं सुजाता को दुख देता किञ्चिन्मात्र गर्भ गौरव
द्रुततरपद पाथोज न्यास से हरती विजन विपिन रौरव ।
कुछ भी नहीं मनोरथ मन में रहती सदा सुजाता शान्त
महश्चतुष्टय श्रुति की करती प्रथित प्रतीक्षा वह निर्भ्रान्त ॥

॥ १०५ ॥

अन्तस्तोया सरस्वती सी मधुमय प्राची ऊषा सी
गूढार्थिका ब्रह्मविद्या सी शुचि द्यौ उडुगन भूषा सी ।
देख कहोल धर्मपत्नी को निर्विकार अन्तर्वतनी
सम्भावित सुखमय तन्मय थे पेखप्रसन्ना पतिवतनी ॥

॥ १०६ ॥

कानन में बज उठी बधाई तापसियाँ मंगल गाईं
सुरललनाएँ मुनिशावक हित ललित खिलौने भी लाईं ।
मुनिदारक निज भाविसखा हित क्रीडोपस्कर जोड़ रहे
झूमझूम आनन्द जलधि में दुरित बन्ध को तोड़ रहे ॥

॥ १०७ ॥

हुआ पुण्य पुंसवन अनुसवन गूँज उठीं वैदिक श्रुतियाँ
विबुधवरूथों की मंगलमय उमड़ पड़ीं नव नवनुतियाँ ।
मंगल मोद प्रमोद तरंगित अन्तरंग यह स्वर्ण दिवस
पूर्ण पुरुष के पुंसवनोचित अवित हो रहे अमल अवस ॥

।। १०८ ।।

नहीं हर्ष सीमा दम्पति की श्रुतवत्ता का करके भान
सस्वर भूसुरदार कर रहे श्रौत ऋचाओं का कलगान ।
आज कहोल कर रहे मन में मूर्त ब्रह्मसुख का अनुभव
हुआ पराभव विगलित भवभव सरस सर्ग शम्भव सम्भव ।।

॥ श्रीराघवः शन्तनोतु ॥

॥ नमो राघवाय ॥

अष्टावक्र महाकाव्य–द्वितीय सर्ग

“सङ्क्रान्ति”

द्वितीय सर्ग–सङ्क्रान्ति

॥ १ ॥

जयति सङ्क्रान्ति मनोहर सर्ग, सभी श्रेयों का जो अपवर्ग ।
जहाँ है सुलभ द्रुहिण मुखवर्ग, विलसता जहाँ विमल अपवर्ग ॥

॥ २ ॥

कौन तुम हो कल्पना अनूप, महामानव की शक्तिस्वरूप ।
पाढ़ती संसृति सङ्कटकूप, समुद्घाटित करती मखयूप ॥

॥ ३ ॥

कौन तुम परिवर्तन परिरंभ, अमल आशाओं का आरंभ ।
सुभगतम सर्गों का प्रारंभ, न दिखता जहाँ समल संरंभ ॥

॥ ४ ॥

कौन तुम भागीरथी अमन्द, पार कर हिमगिरि शिखर समूह ।
तोड़ दुर्गम शैलों का जाल, चली जलनिधि की ओर रसाल ॥

॥ ५ ॥

कौन तुम मधुराका की रात, कर रही विधुन्तुदों का घात ।
इन्दु अकलङ्क गोद में लिए, विहसती पुलक प्रफुल्लित गात ॥

॥ ६ ॥

कौन तुम शंपा नभ में चमक, भर रही उडुगन में भी ज्योति ।
निशाकर दिनकर को भी मीत, बनाकर रही वियत में खेल ॥

॥ ७ ॥

कौन तुम सीमन्तिनी ललाम, न छू पाया जिसको यह काम ।
किसी अज्ञात दयित की खोज, कर रही अविरल आठों याम ॥

।। ८ ॥

कौन तुम नवमल्लिका मनोज्ञ, विषम शर मधुकर से अतिदूर ।
शरद निरपेक्षित विमल विकास, कर रही कलित मलय मृदुवास ॥

।। ९ ।।

कौन तुम वीणा की मूर्छना, कर रही मूर्छित कातर चित्त ।
विपंची भरती नवसंगीत, कर रही काननकुंज अभीत ॥

।। १० ।।

कौन तुम पुरुष पूर्ण चेतना, ऋषभ की गुरु गह्वर गर्जना ।
कृतान्तार्दिनी तरुणतर्जना, सुकवि की सरस सर्ग सर्जना ॥

॥ ११ ॥

तुम्हारी परिभाषा सङ्क्रान्ति, करे कैसे मानव अल्पज्ञ ।
एक ही कर सकते श्रीराम, जो परमेश्वर समर्थ सर्वज्ञ ॥

॥ १२ ॥

न खूनी क्रान्ति कभी सङ्क्रान्ति, वो कहलाती है वैकृत क्रान्ति ।
विचारों की जो सम्यक् क्रान्ति, वही कहलाती है सङ्क्रान्ति ॥

॥ १३ ॥

न रक्तों की सरिता सङ्क्रान्ति, न शीर्षस्रक् भरिता सङ्क्रान्ति ।
न रणभेरी करिता सङ्क्रान्ति, विचार क्रान्ति सदा सङ्क्रान्ति ॥

।। १४ ।।

जहाँ इतिहास नवलतम सर्ग, विरचता विश्रुत विरूद विसर्ग ।
विलसता जहाँ चतुर शुचिवर्ग, उसे कहते शाश्वत सङ्क्रान्ति ॥

।। १५ ।।
जो केवल सौरमास पूरणी, कहे सङ्क्रान्ति उसे ज्यौतिषी ।
वस्तुतः मनुज लक्ष्यपूरणी, सत्य है वैचारिक सङ्क्रान्ति ।।

।। १६ ।।
वर्ष में अविद्वादश सङ्क्रमण, नहीं वास्तव होती सङ्क्रान्ति ।
क्योंकि वह पाके तीसवाँ मास, लुप्त होती लह कालनिदेश ।।

।। १७ ।।
जिसे मलमास नरोत्तममास, व्योम में कर देता है लुप्त ।
काल की नियति अचिन्त्य अतर्क्य, उसे फिर क्यों कहते सङ्क्रान्ति ।।

।। १८ ।।
जहाँ हो सम्यक क्रान्ति प्रयोग, बने जो मानव का उद्योग ।
न झुठ़लाये शत–शत–अभियोग, करके भी कुटिलकाल संयोग ।।

।। १९ ।।
उसे कहते शाश्वत सङ्क्रान्ति, जहाँ हो रूढ़िवाद विश्रान्त ।
जहाँ परिणत हो पारम्परी, जहाँ हों सभी उपद्रव शान्त ।।

।। २० ।।
जहाँ हों मानस सुमति समेत, इन्द्रियाँ दशों लब्धविश्राम ।
विखण्डित वैचारिक सङ्क्रमण, उसे कहते शाश्वत सङ्क्रान्ति ।।

।। २१ ।।
किंतु सङ्क्रान्ति किसे है इष्ट, कौन कटु सुनने को अभ्यस्त ।
सत्य की रक्षा हित है कौन, समर्पित तन मन से सङ्क्लृप्त ।।

।। २२ ।।

सभी को प्रिय अपना अभिमान, प्राण से भी लगता है इष्ट ।
उसीका पोषण करते लोग, छोड़ ईश्वर को भी अज्ञान ॥

।। २३ ।।

सभी को ठकुरसोहाती प्रेय, दूर हो रहा सभी से श्रेय ।
निजश्लाघा में सबको प्रीति, सत्यहित कौन करेगा यत्न॥

॥ २४ ॥

प्रशंसा अपनी सुनने हेतु, सभी के श्रवण सदा अभ्यस्त ।
किसे अब अपना निर्बल पक्ष, श्रवण करना होगा अनुकूल ॥

।। २५ ।।

अन्य के अणु जैसे भी दोष, दीखते सब को शैल समान ।
निजी न्यूनता हिमालय सदृश, किसी को नहीं दीखती कभी ॥

।। २६ ।।

विधाता तेरी कैसी सृष्टि, जहाँ सबकी दोषों पर दृष्टि ।
नहीं कोई भी दीखता आज, गुणग्राही निर्दोष मनुष्य ॥

।। २७ ।।

इसीमें अब कवि का यह सर्ग, करेगा व्याख्यायित सङ्क्रान्ति ।
छिड़ेगा अत्याचार विरुद्ध, अघोषित दुर्निवार्य सङ्घर्ष ॥

।। २८ ।।

बजेगी रणभेरी अत्युग्र, महासङ्क्रान्ति युद्ध की आज ।
विषमताओं का यह प्राकार, ढहेगा होगा अघ संहार ॥

।। २९ ।।
एक ही जनक जननी से जने, युगल सकलांग और विकलांग ।
स्नेह में क्यों इतना यह भेद, कहो कैसा यह विषम समाज ।।

।। ३० ।।
एक पितु के हैं दोनों पुत्र, नियम में फिर भी क्यों अपवाद ।
पलक पर पलता है सकलांग, रिरकता रजरूषित विकलांग ।।

।। ३१ ।।
विषमतामय यह सुरसावदन, कर रहा धैर्यवाति का कदन ।
बन रहा पीड़ा का यह सदन, यथा कीनाश भयङ्कर रदन ।।

।। ३२ ।।
कदाचारों के आज विरुद्ध, कुचलने को अन्याय अनीति ।
महासङ्क्रान्ति चमू है खड़ी, लिये वैचारिक कठिन कृपाण ।।

।। ३३ ।।
सुजाता अन्तर्वत्नी हुई, हुआ पुंसवन सुभग संस्कार ।
गर्भ में अर्भक बढ़ने लगा, उपस्थित अब सीमन्तोन्नयन ।।

।। ३४ ।।
मकर सङ्क्रान्ति माघका मास, षट्तिला कृष्णा एकादशी ।
शनैश्चर यामिनि प्रहर द्वितीय, विपिन नीरव एकान्त सुशान्त ।।

।। ३५ ।।
अनुत्तम अनुराधा नक्षत्र, राशि वृश्चिक और कन्यालग्न ।
स्वनीड़ों में सब पक्षीवृन्द, हो रहे सुख से निद्रामग्न ।।

।। ३६ ।।

हरिण शावक करते रोमन्थ, सो रहे सब सम्मीलित नयन ।
अवनि अंचल में रखकर शीष, छोड़ प्राकृत चापल चुपचाप ॥

।। ३७ ।।

किन्तु इस सन्नाटे के बीच, जग रहा एक गृही निर्भीक ।
सुधी अध्यापक की ही भाँति, कर रहा प्रवचन पूर्वाभ्यास ॥

।। ३८ ।।

अहो कल प्रातः क्या अध्याप्य, करूँ अभ्यस्त वही श्रुतिपाठ ।
न विस्मृत हो कोई भी छन्द, न भूलूँ कोई भी स्वर श्रौत ॥

।। ३९ ।।

यथा संहिता यथा पदपाठ, यथा क्रम करूँ व्यवस्थित शुद्ध ।
स्वस्तनी शोभन श्रुतियाँ सभी, आज ही होंवे मुझे मुखस्थ ॥

।। ४० ।।

जटा-रेखा-माला औ शिखा, रथ-ध्वज-दण्ड तथा घनपाठ ।
यथाश्रुत आठों विकृति प्रकार, अनुक्रमशः सब रहें मुखस्थ ॥

।। ४१ ।।

यही मेरा शौवस्तिक कृत्य, करूँ विद्यार्थीवर्ग को तुष्ट ।
प्रकट कर प्रतिभा प्रखर प्रताप, मुदित विस्मित कर दूँ वटुवृन्द ॥

।। ४२ ।।

अधम वह अध्यापक अज्ञान, न जो कर सके छात्र को तुष्ट ।
न जिसका ज्ञान विमल आदित्य, विकासित कर पाता वटुकंज ॥

।। ४३ ।।

कौन वह गुरु जिसका रविबोध, नहीं हर सका शिष्य तम मोह ।
वचन चातुरी नहीं आतुरी, हरण कर पाइ जिसकी स्फुरी ॥

।। ४४ ।।

यही लोकैषणीय आवेग, बनाता विबुध विप्र को विग्न ।
अबुध दयितासी निद्रा सती, विलंबित हुई मानकर आज ॥

।। ४५ ।।

कर रहे सस्वर पाठ कहोल, सम्भलकर श्रुतियों का अविराम ।
पाणि का वाणी से कर योग, युक्तियों से करते उद्योग ॥

।। ४६ ।।

किन्तु शाब्दिक भ्रम और प्रमाद, दे रहे थे ऋषि को अवसाद ।
कुटिल कर्णापाटव भी उन्हें, समर्पित करता विषम विषाद ॥

।। ४७ ।।

विप्रलिप्सा भी यश की मुधा, कर रही थी भूसुर को खिन्न ।
न होते फिर भी विरत कहोल, वेद स्वाध्याय कर्म से तनिक ॥

।। ४८ ।।

छोड़कर शारीरिक व्यवहार, दिवानिशि हुए कहोल विलीन ।
वेद प्रवचन में शुचिमति धेनु, फँस गई ज्यों दलदल में जाय ॥

।। ४९ ।।

नहीं कुछ भूख नहीं अब प्यास, नहीं कुछ उन्हें सूझता कृत्य ।
बधिर जड़मत्त समान कहोल, लगे लखने श्रुतिपाठ खगोल ॥

।। ५० ।।

हुआ उन्मत्त सदृश व्यवहार, न कोई अब रह गया विचार ।
वेद प्रवचन ही अब सर्वस्व, बन गया ऋषि कहोल का ध्येय ॥

।। ५१ ।।

सुजाता का अर्भक किशोर, गर्भ में रहकर भी चुपचाप ।
देख पितु का यह कार्य कलाप, विकल सह रहा दिवानिशि ताप ॥

।। ५२ ।।

सौर तैजस तनु सौर विवेक, ब्रह्मवर्चसी स्वान्त निर्दोष ।
नहीं ढँक सकी अविद्या इसे, इसीसे करके भी षड्यन्त्र ॥

।। ५३ ।।

सोचने लगा गर्भगत अर्भक, आज मुझको है क्या करणीय ।
करूँ पितृवर का प्रखर विरोध, करूँ या निर्बल का अनुरोध ॥

।। ५४ ।।

करूँगा यदि मैं आग्रह अधिक, मिलेगा मुझे भयंकर शाप ।
तदपि मैं होकर निःसङ्कोच, करूँगा ऋषिका प्रबल विरोध ॥

।। ५५ ।।

न होगी यदि सात्विक सङ्क्रान्ति, न होगा कदाचरण का अन्त ।
अतः होना है मुखरित मुझे, पिता का करना है प्रतिवाद ।।

।। ५६ ।।

अहो ऋषि की कैसी शेमुषी, कौन प्रतिभा के धनी कहोल ।
दिवानिशि रटकर भी श्रुति पाठ भूलते ज्यों ज्यौतिषी खगोल ॥

।। ५७ ।।

अहो ऋषि का कैसा अध्ययन, स्वप्रतिभा का फिर भी यह दंभ।
अज्ञ बालक ज्यों बारंबार, अटकते श्रुति में सह न्यक्कार॥

।। ५८ ।।

रात दिन तोते के ही भाँति, ऋचायें रटते हैं मम तात ।
अरे फिर भी होता विस्मरण, अहो कैसा प्रतिभा परिहास ॥

।। ५९ ।।

स्वयं भी पढ़ते वेद अशुद्ध, सिखाते वटुओं को भी तथा ।
चलाई गतदृग् पारम्परी, सहेगा कब तक बुध परिवार ॥

।। ६० ।।

नहीं था यदि निज पर विश्वास, बुलाए क्यों वटुवृन्द अनेक ।
कर रहे हत्या क्यों निर्दोष, सुधी छात्रों की दम्भी तात ॥

।। ६१ ।।

गर्भ अर्भक बोला निर्भीक, सान्द्रस्वर में वाणी सुस्पष्ट ।
मनो प्रावृष पर्जन्य गभीर, झटिति कर नीरज विपिन सशब्द ॥

।। ६२ ।।

पिताश्री क्यों कर रहे अनर्थ, आप श्रुतियों का कर अपपाठ ।
रातदिन करते हैं स्वाध्याय, तदपि स्वर में हैं दूषण आठ ॥

।। ६३ ।।

अरे कैसा प्रतिभा का दृश्य, बालिशों जैसा नर्तन नग्न ।
एक ही दूषण बारम्बार, श्रवणगोचर होता है हाय ॥

।। ६४ ।।

नहीं यदि प्रतिभा में सामर्थ्य, बुलाते क्यों वटुओं को आप ।
अरे क्यों हंसों को दिनरात, पिलाते कालकूट निर्भ्रान्त ।।

।। ६५ ।।

न सह पाऊँगा मैं अपपाठ, सुभग श्रुतियों का हे पितृवर्य ।
बन्द करिये आडम्बर आप, विरत हो अबसे दम्भकलाप ।।

।। ६६ ।।

सुने ऋषि अर्भक के वर वचन, परम भूतार्थ परंतु कठोर ।
कुलिश शत निष्ठुर ज्यों नाराच, श्रवणमानस में चुभे प्रभोर ।।

।। ६७ ।।

सभी सिहरे मुनिवर के गात्र, यथा हिमऋतु में सरसिजपत्र ।
हृदय में धड़कन हुई अपार, स्विन्न हो गया बदन वनजात ।।

।। ६८ ।।

उमड़ आया मन में अमर्ष, निरख निज प्रतिभा का अपकर्ष ।
कोप का उमगा वेग प्रकर्ष, न सह पाए अर्भक उत्कर्ष ।।

।। ६९ ।।

भृकुटि तन गई हुआ दृग लाल, अधर फड़का कट-कट कर दाँत ।
चबाकर दसन-वसन साक्रोश, वचन बोले विष घोल कहोल ।।

।। ७० ।।

अरे तू कौन नराधम अर्भ, कर रहा दूषित भार्यागर्भ ।
अभी से यदि इतना उद्दण्ड, भविष्यत् कितना होगा चण्ड ।।

।। ७१ ।।
तुझे क्या विदित पाठ-अपपाठ, कर रहा बालिश व्यर्थ प्रलाप ।
गर्भअर्भक संस्कार विहीन, तुझे क्या वेदों में अधिकार ।।

।। ७२ ।।
शान्त रह हो जा सत्वर मौन, मुझे करने दे निज स्वाध्याय ।
नहीं तो भोगेगा परिणाम, स्वकृत पापों का कठिन दुरन्त ।।

।। ७३ ।।
हमारी परम्परा प्राचीन, नहीं है कुछ भी अर्वाचीन ।
विधाता को भी होता मोह, वेदवारिधि में बालिश बाल ।।

।। ७४ ।।
विस्मरण तो है जीव स्वभाव, न उसमें विचिकित्सा करणीय ।
अतः अर्भक हो जा चुपचाप, पूर्ववत् करने दे स्वाध्याय ।।

।। ७५ ।।
अर्भ बोला हे पितृवर आप, निरर्थक पाल रहे अभिमान ।
दुराग्रह को कह पारम्परी, रूढ़ियों का करते आह्वान ।।

।। ७६ ।।
पुराना क्या सब कुछ है साधु, नया क्या सब कुछ तात असाधु ।
यही है रूढ़ि मूर्खता घोर, परीक्षा सन्तों का श्रृंगार ।।

।। ७७ ।।
अरे कब तक ढोएँगे आप, मृतक की सड़ी हुयी यह लाश ।
फेंककर इसे शुद्धकर स्वान्त, रचें पावन नूतन इतिहास ।।

।। ७८ ।।
छोड़ दें अब ॐ शान्ति-शान्ति, कहें अब तो ॐ क्रान्ति क्रान्ति ।
ॐ शान्तिः वृद्धों का घोष, ॐ क्रान्तिः है युवक निनाद ॥

।। ७९ ।।
पुराना शान्ति-शान्ति उद्घोष, छोड़ दें तात रुढ़ि का दम्भ ।
नया नारा अब सक्रिय करें, कहें अब ॐ क्रान्ति सङ्क्रान्ति ॥

।। ८० ।। गीत
क्रान्ति जग सङ्क्रान्तिमय हो, शान्ति भी सङ्क्रान्ति पूर्वा ।
क्रान्ति विरहित शान्तिलय हो, क्रान्ति जग सङ्क्रान्तिमय हो ॥

शान्ति का प्राचीन नारा तज अकर्मठ का सहारा ।
विश्वनभ में नवल तारा क्रान्तिमय अनुपम उदय हो ॥ क्रान्ति0

द्यौः क्रान्तिः नभः क्रान्तिः भाग्यभूमाभूमिक्रान्तिः ।
परमपावन आपः क्रान्तिः ओषधिः सङ्क्रान्तिमय हो ॥ क्रान्ति0

नववनस्पतिवृन्द क्रान्तिः विश्वदेवस्पन्द क्रान्तिः ।
महाकाव्यच्छन्दक्रान्तिः ब्रह्मभव सङ्क्रान्तिमय हो ॥ क्रान्ति0

पंचप्राकृत भूत क्रान्ति : वह्नि सर्पिषपूतक्रान्तिः ।
योगिजति अवधूतक्रान्तिः सृष्टि सब सङ्क्रान्तिमय हो ॥ क्रान्ति0

हरितक्रान्तिः सरितक्रान्तिः महितमानवचरित क्रान्तिः ।
मूल्य अनुशासन समन्वित चर-अचर सङ्क्रान्तिमय हो ॥ क्रान्ति0

।। ८१ ।।

सभी को सब कुछ आता नहीं, राम भगवान एक सर्वग्य ।
जीव का परिच्छिन्न है ज्ञान, इसी से वह होता अल्पज्ञ ॥

।। ८२ ।।

जीव अणु होकर चेतन नित्य, व्याप्य और बहुत असंख्यक कृत्य ।
एक परमात्मा व्यापक नित्य, चेतनों का चेतन संचिन्त्य ॥

।। ८३ ।।

वस्तुतः स्व में पूर्ण का बोध, दंभ अज्ञान जीव का तात ।
इसी से भ्रम निष्कासन हेतु, शास्त्र जिज्ञासा है अनिवार्य ॥

।। ८४ ।।

जो अपनी त्रुटियाँ लेता ढाँक, नहीं सकता भूलों को झाँक ।
वही रोता है शास्त्रविहीन, धेनु इव कर्दम गत निरुपाय ॥

।। ८५ ।।

अतः हे तात छोड़कर दंभ, करें त्रुटियों का मार्जन आप ।
पुनः उद्दालक ऋषि ढिग बैठ, सीख लें सस्वर वैदिक पाठ ॥

।। ८६ ।।

मैं हूँ आत्मा विज्ञान स्वरूप, गर्भ में ही सब मुझको ज्ञान ।
सताती नहीं गर्भ यातना, मुझे कुछ भी न हुआ विस्मरण ॥

।। ८७ ।।

सौर तेजों में मेरा जन्म, न कुछ भी है मुझको व्यामोह ।
आपश्री के ही हित के लिये, कर रहा मैं वाणी विद्रोह ॥

।। ८८ ।।

मैं नहीं शरीर न इंद्री स्वान्त, अहम नो नहीं बुद्धि विकलांत ।
हरिदास मैं प्रत्यगात्म स्वरूप, मैं पंचभूत से भी अक्रांत ॥

।। ८९ ।।

पिताश्री मैं हूँ ऋषि अकलंक, विधित्सित विकलांगों का त्राण ।
सुजाता गर्भवास भी खेल, बनें मुझसे अब आप अशंक ॥

।। ९० ।।

सुधारें स्वयं स्वयं को आप, उद्धारें स्वयं स्वयं को आप ।
शृंगारें स्वयं स्वयं को आप, विचारें स्वयं स्वयं को आप ॥

।। ९१ ।।

मैं प्रत्यगात्मा रघुवर का दास, मुझी से होता सृष्टि विलास ।
मुझी से होता श्रौत विकास, मुझी से बनते हैं इतिहास ॥

।। ९२ ।।

मैं आत्मा परमेश्वरी भूति, मैं जीवात्मा हूँ सुख संभूति ।
मैं नित्य शुद्ध ब्रह्मानुभूति, मैं जीव चिरंतन चित्त विभूति ॥

।। ९३ ।।

हे तात चरण हों सावधान, श्रुतियों का न करें अनवधान ।
स्वर सहित करें ऋषि वेदगान, होए भारत मंगल विधान ॥

।। ९४ ।।

यदि पद से स्वर से दुष्ट मंत्र, पढ़ता भूसुर करके कुतंत्र ।
तब वाग-वज्र बन वह कुमंत्र, हरता पाठक का प्राणतंत्र ॥

।। ९५ ।।

छोड़िये दुराग्रह पूज्य तात, न करें बटुओं पर वज्रपात ।
फिर से विद्यार्थी बन सुजात, अभ्यस्त करें फिर मंत्रजात ॥

।। ९६ ।।

सुन वचन सत्य यद्यपि कठोर, अपमान समझ अपना कहोल ।
संक्लांति दूत के दमन हेतु, दे दिये शाप अत्यंत घोर ॥

।। ९७ ।।

रे खर्भ अर्भ पंडितम्न्य, अतिवादी जड़ जातक जघन्य ।
अपमानित कर मुझको अघन्य, मानता स्वयं को विबुध धन्य ॥

।। ९८ ।।

तू पुत्र नहीं पामर कुपुत्र, भावी बालिश बालक कुसूत्र ।
अर्भ का यह चंचल चरित्र, पाएगा कटुफल इहामुत्र ॥

।। ९९ ।।

ममश्रुति वाचन में आठ दोष, दिखलाए तुने सहाक्रोश ।
होवें तव आठों अंग वक्र, पड़ भव जलनिधि में यथा नक्र ॥

।। १०० ।।

हों तेरे आठों वक्र अंग, विकलांग बनें तेरे शुभांग ।
जन्में तू हो करके अपंग, तुझे डसे शाप बनकर भुजंग ॥

।। १०१ ।।

शाप पविपात सदृश अति घोर, देखकर भी न हुआ शिशु भीत ।
समझ विधि का यह विहित विधान, हँस पड़ा ब्राह्मण अर्भ किशोर ॥

।। १०२ ।।
मचा वन नभ में हाहाकार, सुजाता सिर धुन करे विलाप ।
शाप देकर ऋषिवर्य कहोल, लगे करने फिर पश्चाताप ॥

।। १०३ ।।
देख शिशु सहनशीलता विप्र, चीखकर कर्शे छाती पीट ।
नैन जीवन से आनन सींच, लगे करने परिवेदन तात ॥

।। १०४ ।।
अहो कितना जघन्य यह क्रोध, बनाता नर को यही पिशाच ।
मनुजता का यह शाश्वत शत्रु, सिखाता यही क्रूर प्रतिशोध ॥

।। १०५ ।।
आज मैंने अपने ही हाथ, काट डाला शिशु सुत का माथ ।
प्रखर प्रतिभा सम्पन्न शुभांग, बना डाला मैंने विकलांग ॥

।। १०६ ।।
सदा मुझको भावी संतान, कोसती चिढ़ती मुझपर थूक ।
करेंगे क्षमा नहीं दिनरात, बकेगी गाली कर अपमान ॥

।। १०७ ।।
विहँस बोले फिर अष्टावक्र, पिताश्री मन में करें न ग्लानि ।
विधित्सित विधि का ममहित यही, यही संक्रांति सर्ग सर्वस्व ॥

॥ १०८ ॥

चिंता त्यागें मुदित मुझको आशिषा दें पिताश्री,
जैसा जन्मूँ तनय बनके आपका ही रहूँ मैं ।
अष्टावक्र प्रकृति सिर पे सौख्य से शाप लेके,
होउँ श्रीमन् विकल जन का नित संक्रांति कर्ता ॥

॥ श्रीराघवः शन्तनोतु ॥

॥ नमो राघवाय ॥

अष्टावक्र महाकाव्य–तृतीय सर्ग

“समस्या”

तृतीय सर्ग–समस्या

।। १ ।।

जीवन की असफलतायें करतीं जिनकी वरिवस्या
वह निकष महामानव की बनकर आगई समस्या ।
जो सुखका समसन करके करती दुःख को नमस्या
तापस की तपस्थली सी कहलाती वही समस्या ॥

।। २ ।।

जो घोर निराशा लाकर सौख्यों को दूर भगाती
जो शान्त बसन्ती बनमें दश दिशि दावाग्नि लगाती ।
विधि से लेकर चींटी तक जो सबको नाच नचाती
कहलाती वही समस्या जो सबको सदा सताती ॥

।। ३ ।।

ब्रह्मा भी जिसे निरखकर नित रहते हैं घबराए
चक्री भी चक्र से जिसका कभी काट नहीं शिर पाए ।
प्रलयङ्कर का ताण्डव भी जिसका न नाश कर पाया
अविनाशिनी वही समस्या जिससे अगजग घबराया ॥

।। ४ ।।

अवरोधित शान्तिनिलय में आई यह कौन पिशाची
पी–पी कदुष्णतर शोणित किस निर्भयता से नाची ।
किस सव्यसाँची के धनु से छूटी करोड़ोंन्मुख सांची
दे शल्य रक्त पीजाती अनुदिन अवली नाराची ॥

।। ५ ।।

यह कैसी राजसभा है जिसमें अजातरिपु भूले
यह कैसी छलना पलना जिसमें रोता शिशु झूले ।
यह कौन विपंची वंशी जो बिना कृष्ण के बजती
यह कौन प्रवीणा वीणा जो करूणरागिनी सजती ॥

।। ६ ।।

यह कैसी है मखवेदी जहाँ हाहाकार गरजता
बिना हव्य हविर्भुक् जलता जो स्वाहाकार बर्जिता ।
यह कौन चिता चितहरणी जो नहीं कभी भी बुझती
यह कौन नदी बैतरणी जो नहीं किसी से रूझती ॥

।। ७ ।।

यह कैसी सुता कृतघ्ना जो निजजनिता को खाती
यह कैसी क्षुधा जघन्या जो कभी नहीं बुझ पाती ।
यह कौन जलधि की बेला जिसको न पा सका कोई
यह काष्ठा कौन सहेला जिसतक न जा सका कोई ॥

।। ८ ।।

यह निशा कौन अलबेली अवसान न जिसका दिखता
यह कौन विचित्र पहेली समाधान न जिसका दिखता ।
यह किस आतुर की काया जिसकी कोई न चिकित्सा
यह कौन लक्ष्य की छाया जिसमें सन्तत विचिकित्सा ॥

।। ९ ।।

जो जला रही विधि को भी यह कौन अतर्कित जूर्ती
यह कौन अपूर्णा गगरी कवि भी करे जिसकी पूर्ती ।
यह कौन शून्य की रेखा कोई न जिसे झुठलाता
यह कौन अतिथि बाला है जिसे कोई नहीं बुलाता ॥

।। १० ।।

यह कौन नारी निर्लज्जा जो आती बिना बुलाए
यह कौन नृपाल समज्जा जहाँ धाता भी झुक जाए ।
यह किस राका की रजनी उपराग जहाँ है सन्तत
यह किस साजन की सजनी नीराग जहाँ है अविरत ॥

।। ११ ।।

यह किस प्रमेय की श्रुति है मिलता न जहाँ कोई हल
यह कौन अमेय व्रतति है फलता न जहाँ कोई फल ।
यह कैसी कठिन कृपाणी जो बिना पाणि के चलती
यह किस वाणी की वाणी जो विष विस्फोट उगलती ॥

।। १२ ।।

यह कौन स्वयवंर बाला जो नहीं किसी को भाती
यह कौन अजेय जयमाला जो विजय के बिना मिल जाती ।
यह कौन धृष्ट आगन्तुक जो आता बिना बुलाए
यह कौन हार नर जिसको पहनता बिना पहनाए ॥

।। १३ ।।

अच्छा अब समझमें आई तुम हो डाकिनी समस्या
शङ्का सङ्कट की जननी तुम हो शाकिनी समस्या ।
तुम उस रावण की लङ्का जिसे बारम्बार जलाकर
हनुमान भी हारे मनमें जिसे ज्वाला से झुलसाकर ॥

।। १४ ।।

तुम वह किष्किन्धा नगरी जहाँ राम न गए कभी भी
जहाँ केवल दुःख की गगरी राजा है बालि अभी भी ।
तुम ऐसी पंचवटी हो जहाँ अब भी त्रिशिरा खरदूषण
तुम ऐसी नदी तटी हो जहाँ नहाए नहीं नरभूषण ॥

।। १५ ।।

तुम वह दण्डकस्थली हो जहाँ हाटक कपट हरिण है ।
मारा न जा सका अब भी हारालक जिसे द्रुहिण है ।
तुम वह कबन्धभुजबल्ली जो अबतक नही कटी है
तुम वही घटा घनमल्ली जो अब तक नहीं छटी है ॥

।। १६ ।।

सचमुच तुम वही अयोध्या जहाँ केवल है कैकेयी
जो मार मन्थरा मति से निजपति को कुमति ही सेई ।
तुम ऐसी मथुरापुरी हो जहाँ राजा कंस अभी भी
जहाँ से हुए कृष्ण पलायित जहाँ बंशी न बजी कभी भी ॥

।। १७ ।।

तुम वह हो माया नगरी जहाँ सती हुई अपमानित
जहाँ दक्ष–दक्षअध्वर में अभिमान हुआ सम्मानित ।
तुम वही काशी मणिकरणी जहाँ चिता रातदिन जलती
जहाँ चितकृति मङ्गलहरणी संकट संसृति ही पलती ॥

।। १८ ।।

तुम वह अवन्तिका जिसमें क्षिप्रा की अतितनु धारा
बस महाकाल का नर्तन लसती कृतान्त की कारा ।
सच–सच अतिदुष्ट समस्ये तुम हो वह कांची याम्या
जहाँ वरदराज भी सोए न जहाँ शिवलीला रम्या ॥

।। १९ ।।

तुम वह द्वारकापुरी हो जो हुई सागर में प्लावित
केवल हरिमन्दिर तजकर जो संसृति में संप्लावित ।
तुम दिखती यद्यपि समस्ये सातों पुरियों की यात्रा
फिर भी न भासती तुममें कुछ सुख मङ्गल की मात्रा ॥

।। २० ।।

तुम वह रावण की भगिनी श्रुतिनाक काटकर जिसकी
नहीं पाए पार लखन भी छलना को छाँटकर जिसकी ।
तू वही पुतना दुष्टे डायिन निर्दया कुनारी
पयपान व्याजसे मारे जिसको कर यत्न मुरारी

।। २१ ।।

वह कौन जगत में योद्धा जो पड़ा न तेरे पाले
वे कौन वीर जो तेरे आगे न हथियार डाले ।
होता पबि भी पंकज है तेरी लीला के आगे
सूत्रामा भी तेरी ढिग अपनी गुरू गरिमा त्यागे ॥

।। २२ ।।

सुरनायक को भी तूने पलभर में रंक बनाया
ब्रह्मादि देवताओं को तूने बहु नाच नचाया ।
तु अनिर्वाच्य ईश्वर की है ऐंद्रजाल की माया
जिसने अग जग को अपनी छलना मैं है भरमाया ॥

।। २३ ।।

तू कैसी भूलभूलैया परमेश्वर की नियति है
जिसमें आकर पथ भूला ब्रह्मचारी गृही यति है ।
तू आई इस जगती में संग ले कठिनता सहेली
जीवन यात्रा लतीका पर बन मुखर मधुकरी खेली ॥

।। २४ ।।

तू मृत्यु द्युतिका यम की लिये हाथ काल करवाली
करती निष्प्राण जनों को बनकर प्रलंयकर काली ।
तू उनको अधिक सताती जो तुझसे डर जाते हैं
उनको ही तू धमकाती जो तुमसे भय खाते हैं ॥

।। २५ ।।

तुम मुधा देह छाया सी सबको ठगती रहती हो,
जो दूर भागता जितना उतना पीछे लगती हो ।
जो तेरे सम्मुख होकर करता है पीछा तेरा,
उसको न सता पाती तू मिट जाता अमित अँधेरा ॥

।। २६ ।।

तू नदी कर्मनाशा है नैराश्य नीर ही बहती
त्रैशंकव लालोदभूता पूतात्माओं को दुहती ।
तू मरू मरीचिका मिथ्था जिसे पाकर भोला माला
मरता है हरिन तृषातुर पी-पी ऊष्मा की हाला ॥

।। २७ ।।

तू अरण अरण्यानी है जहाँ नहीं कल्पतरु शाखा
तू हिमानी घनसरनी है जहाँ दिखती नही विशाखा ।
तू वह करीलकी लतिका जहाँ शाखा पत्र नहीं है
तू वह सम्प्रोषित पतिका जहाँ सेवा सत्र नहीं है ॥

।। २८ ।।

तू अनिर्वाच्य ख्यातिसी नहिं जो सत् नहीं असत् है
तू उपरक्ता शति सी जहाँ विफल अनुष्ठित व्रत है ।
तू सौगत संवृति सी जो क्षणिकवाद में सोहे
तू मन्मथि निर्वृत्ति सी अस्थायिनी मनको पोहे ॥

।। २९ ।।

जीवनकी मधुराका में उपरक्त कुहू सी आकर
सुख तहस नहस कर देती तू मनको चपल बनाकर ।
निष्कारण विडम्बनायें बनकर अनुचरी तुम्हारी
कर देती नर पामर को पलभर में दुखी भिखारी ॥

।। ३० ।।

तू वह मादक मदिरा है जिससे नर पागल होकर
करता सब कदाचरण है अपना विवेक बल खोकर ।
विधि लिखित भाललेखा सी तुम हो नरकी दुर्बलता
उपरक्त चन्द्ररेखा सी तुम हो मन की निर्बलता ॥

।। ३१ ।।

पर सुन लो कान लगाकर हे कुटिले जटिल समस्ये
पहचान गया मैं तुमको जटिले संकट वरिवस्ये ।
अब तक अनेक लोगों को तुम ठगती ही आई हो
संकट संसृति रोगों से तुम पगती ही आई हो ॥

।। ३२ ।।

तुम व्याधिनी जैसी उसको अपना हो लक्ष्य बनाती
जिसके मन में रघुवर की नहिं प्रेमभक्ति की थाती ।
वह सार मेय सा पामर फिरता है मारा-मारा
वह जटिल समस्याओं से घिरता रहता है हारा ॥

।। ३३ ।।

उसके निर्बल पक्षों का तुम दुरूपयोग हो करती
जिसकी मति वरटा प्रभु के यश मानस में न विहरती ।
उसके मन पल्लन को तुम मथती रहती हो संतत
दुष्टे सैरभी सरिसी कर प्रकट पाप संकटतम ॥

।। ३४ ।।

जो रामचंद्र चंदिर का हो जाता चतुर चकोरक
उसको न व्यथित कर पाते तव कुटिल बिलोचन कोरक ।
हरिचरित चंद्र से विकसा जिसका मृदु मानस कैरव
उसको न सता सकती तू प्रकटित करके भी रौरव ॥

।। ३५ ।।

शास्त्रों का यही सिखावन मेरा भी यही है अनुभव
हरि भक्ति समस्याओं का कर देती प्रबल पराभव ।
तब तक जन के मानस को करती है विकल समस्या
जब तक न मुदित वह करता सीतावर चरण नमस्या ॥

।। ३६ ।।

मेरा न बाल बाँका तुम कर पाओगी हे पापिन
मेरे मन में बसते हैं श्रीराघव हे संतापिन ।
संपूर्ण समस्याओं का शाश्वत समाधान यही है
संपूर्ण तपस्याओं का फलरूप निदान यही है ॥

।। ३७ ।।

हम सर्व भव से प्रभु के होकर ही उन्हें रिझायें
उनसे ही समस्याओं के समाधान सूत्र हम पाएँ ।
सुलझा सकते हैं उलझन हम सबकी वही धनुर्धर
जो भारतादि की जटाएँ उलझी सुलझाए श्रीवर ॥

।। ३८ ।।

ऐ पामर अपने मन में क्यों चिंता चिता जलाता
क्यों कोटि समस्याओं का तू है अंचर कहलाता ।
सन्मुख चिंतामणि तजकर तू कांच कीरिच ही मरता
कंठीरव शावक होकर तू सारमेय से डरता ॥

।। ३९ ।।

तजि कामधेनु का मंदिर दुहता पय कुटिल खरी से
हो सुरभि तनय भी बालिश संबंद्ध हुआ शूकरी से ।
इस जीवन में क्यों आई यह भौतिकवादी आँधी
क्यों अपने सिर पर ले ली तूने शत कोटि उपाधी ॥

।। ४० ।।

इस चकाचौंध में कबतक भटकता रहेगा पामर
इस भूल-भूलैया में तू कब तक भूलेगा मर-मर ।
इस झूठी मृगतृष्णा में तू कब तक हरिन मरेगा
कब तक मुठ्ठी भर-भरकर लोचन में धूल भरेगा ॥

।। ४१ ।।

अब समय नहीं सोने का तजि नींद जीव–जड़ जागो
यह काल नहीं रोने का अब अकर्मण्यता त्यागो ।
धर हाथ–हाथ पर कब तक तू जीव रहेगा बैठा
कब तक अंक में शूनी के धर ग्रीव रहेगा ऐंठा ॥

।। ४२ ।।

कातर ज्यों कातर स्वर में मत दैव–दैव चिल्लाओ
अध्वर्यु बनो अध्वर में शाश्वत पुरूषार्थ जगाओ ।
न समस्याओं से भागो तुम अमृत पुत्र अविनाशी
कर सर्व समर्पण प्रभु को अब बनो शुद्ध संन्यासी ॥

।। ४३ ।।

मन वचन कर्म संयत कर बन जाओ तुरंत त्रिदण्डी
मत भूल अकर्मठता को स्वीकारो बन पाखंडी ।
यह कर्मक्षेत्र है भारत इसमें करना है स्वाहा
परहित सर्वस्व समर्पण इससे ही मिटेगी हाहा ॥

।। ४४ ।।

अब कायर बन कर हमको सिर पीट नहीं रोना हैं
विकलांगजनों के सेवा व्रत में दीक्षित होना है ।
भौतिक अंगों की विकलता न बनेगी पथ में बाधक
संकल्प सुदृढ़ता केवल सत्कर्म की होगी साधक ॥

।। ४५ ।।

देकर के शाप पिता ने मुझे भले विकलांग बनाया
पर नहीं विकल कर पाए मेरी अध्यात्मिक काया ।
मैं कच्छप की ही गति से बढ़ता जाऊँगा आगे
होकर भी पंगु पर्वत पर मैं चढ़ूँगा आलस त्यागे ॥

।। ४६ ।।

कैसे रोकेंगे पिताश्री मेरी यह जीवन यात्रा
जानते न ब्रह्मा भी है जिसकी सीमा की मात्रा ।
जो है शरीर क्षणभंगुर वह शप्त हुआ पितृवर से
पर पिता दूर अबभी हैं मेरे तनु अबिनश्वर से ॥

।। ४७ ।।

सागरंगमा गंगा को गिरिवर क्या रोक सकेंगे
रति कृत भव भंगा को क्या पामर टोक सकेंगे ।
यात्रा है अविरल मेरी संकल्प सुदृढ़ है मेरा
बाधित न मुझे कर सकता यह जग का गहन अंधेरा ॥

।। ४८ ।।

विकलांग हुआ तन तो क्या मेरा मन विकलांग नहीं है
न मिला मुझे कोई जगत में जो जन विकलांग नहीं है ।
वस्तुतः किसी न किसी से विकलांग सभी हैं प्राणी
सकलांग एक श्रीराघव परमेश्वर कार्मूक पाणी ॥

।। ४९ ।।

यह जगत नीच है कितना इसकी कहाँ गई तपस्या
जहाँ सत्य कथन ही उपस्थित करता हो जटिल समस्या ।
जहाँ सतत सत्यवादी ही माना जाता अपराधी
जहाँ सदाचरण की संज्ञा पाती छलता सोपाधी ॥

।। ५० ।।

जहाँ अधी अशुभ अन्यायी होता पूजित सममानित
जहाँ अत्याचार विरोधी होता न्यायी अपमानित ।
दे उत्तर मुझे विधाता तेरा समाज यह कैसा
जहाँ सत्य न पूजा पाता तेरा प्रयाज यह कैसा ॥

।। ५१ ।।

हे पूज्य पिताश्री सुनलें मैं निरपराधिक दर्पण
जो करता आया जगमें केवल निज सत्य समर्पण ।
फिर भी कुमन्यु वस तुमने किये आठ मंजु तन टुकड़े
क्या अभी नहीं मुसुकाए क्यों मसल रहे हो मुखड़े ॥

।। ५२ ।। (गीत)

क्यों मुझे यों तोड़ते हो, क्यो पटक कर फोड़ते हो ?
क्या किया है दोष मैने, क्यों किया आक्रोश तुमने
यत्न से संचित चिरत्तन, तोष क्यों निज छोड़ते हो ॥ क्यों०

क्या यही अपराध मेरा, जो कि तुमको सच दिखाया।
यही अनय अगाध मेरा, तुम्हें वास्तववपु बताया ॥
यही सत्य न यह सके तुम, झिड़क मुझे मरोड़ते हो ॥ क्यों०

क्या दिया उपहार मुझको, जहाँ चाहा वहीं पटका
क्या दिया सत्कार मुझको, बन निरीह सदैव भटका ।
तदपि इतना कोप करके, घनाडम्बर जोड़ते हो ॥ क्यों०

इस जगत में सत्य कहना, घोरतम प्रतिषेध है क्या
न्यायवादी नित्य रहना, निन्द्य कृत्य निषेध है क्या ।
बन पराए निजजनों पर, कालकूट उड़ेलते हो ॥ क्यों०

कर न पाए तुम कभी भी, अहो अपनो पर भरोसा
कहा जिसने सत्य तुमने, झिड़क कर उसको ही कोसा ।
मुझ बान्धव को अलग कर, क्यों क्षितिज में छेड़ते हो ॥ क्यों०

।। ५३ ।।

आपके शुक्र से संभव पल रहा जो शुचि तनु मेरा
वह बँटा आठ टुकड़ों में नहीं हुआ अशुचि मन मेरा ।
कर दो तनके सौ टुकड़े मनको न तोड़ पाओगे
यह मन्दिर बना हरिका इसको न फोड़ पाओगे ॥

।। ५४ ।।

सातवीं धातुसे जिसको श्रीचरणों ने उपजाया
हा वही आठ भागों में आपने बाट दी काया ।
हे तात सोहती है क्या भवदीया यह निर्दयता
क्या नहीं थूकती इस पर शार्दूलदी क्रूर अदयता ॥

।। ५५ ।।

माता स्वपुत्र खातीं यह बात जगत में विश्रुत
बृश्चिका सर्पिणी इसका है उदाहरण भी प्रस्तुत ।
पर पिता पुत्रका भक्षक यह दृश्य आज ही देखा है
इतिहास करेगा भावी इस घटना का भी लेखा ॥

।। ५६ ।।

तुमने जना तुमने नसाया मौलिक अधिकार तुम्हारा
इसपर मैं कुछ न कहूँगा उपकृति प्रतिकार तुम्हारा ।
जन्माकर तुम ही कुचलते मेरा तनु सौम्य सलोना
जो रचता वही मसलता पार्थिवी कुलाल खिलौना ॥

।। ५७ ।।

पर इस घटना से ऋषिवर मानवता ही रोयेगी
सभ्यता थूककर तुमपर आँसूसे मुख धोयेगी ।
यह कालीरात की गाथा काला इतिहास लिखेगा
सहृदय कवि कोटि युगों तक झूल्केगा और चिखेगा ॥

।। ५८ ।।

मैं सहन करुँगा सबकुछ सहने के लिए जन्मा हूँ
विकलांग की करुण कहानी कहने के लिए जन्मा हूँ ।
यह शापगरल पितृवरका घुट–घुट चुपचाप पिऊँगा
न मरूँगा परमेश्वर का हूँ अंश अपाप जिऊँगा ॥

।। ५९ ।।

इस क्षण ही टूट रहे हैं ये आठों अंग हमारे
सब संगी छूट रहे हैं ईश्वर हैं संग हमारे ।
सुरसा सी मुख फैलाकर गरजती हुई यह आई
खाने को मुझे तरजती गर्भीय यातना माई ॥

।। ६० ।।

पर मुझे नहीं डर लगता नहिं संशय मनमें मेरे
उत्साह अपरिमित जगता नहिं आमय तनमें मेरे ।
दुख-सुख भय हरष शुभाशुभ पे मन के सभी धरम हैं
आत्मा अनवद्य अनघ है अघदायक सभी करम हैं ॥

।। ६१ ।।

मैं हूँ अनादि निरुपद्रव मेरा अनिंध है अनुभव
कोई न समस्या मेरा कर सकती कभी पराभव ।
मुझको न शक्र का पबि भी कर सकता छिन्न कदाचित्
मुझको न प्रलय का अबि भी कर सकता खिन्न कदाचित् ॥

।। ६२ ।।

अब डहक न सके कभी भी मुझे प्रबल वैष्णवी माया
मैं छोड़ प्रपंच अभी से हरि चरण शरण में आया ।
उल्बण भीषण प्रलयानल मुझको न जला सकता है
प्रलयीय हिमानी का जल मुझको न गला सकता है ॥

।। ६३ ।।

सम्बर्तक सखा मरूत भी मुझको न उड़ा पायेगा
वह कारतान्तिक प्रभंजन मुझको न सुखा पायेगा ।
आकाश भी मुझे कदाचित अवकाश नहीं दे सकता
मैं हूँ अनमोल न कोई मुझे मोल कोई ले सकता ॥

।। ६४ ।।

आठों ही अपर प्रकृतियाँ मेरे चरणों की चेरी
पाँचों ही वृत्तियाँ करती दिन रात नमस्या मेरी ।
मैं स्थाणु अचल अविकारी चित् तत्व सनातन मैं हूँ
मैं अमृत पुत्र अधिकारी अस्तित्व पुरातन मैं हूँ ॥

।। ६५ ।।

मैं कभी नहीं जन्मा था जन्मूँगा नहीं कदाचित
मैं कभी नही मरता हूँ न मरूँगा और कदाचित ।
मैं शुद्ध बुद्ध निरवग्रह, मैं हूँ विशुद्ध चेतन घन
मैं नित्य निरंजन शाश्वत मैं हूँ आनन्द निकेतन ॥

।। ६६ ।।

मैं बहुत और अनुचेतन जातीतः एक मैं संतत
रघुवर्य दास अनिकेतन स्वस्वामी भावमय अविरत ।
मैं दास राम का शाश्वत श्री राघव मेरे स्वामी
मैं हूँ नियम्य और नियंता श्री हरि हैं अंतर्यामी ॥

॥ ६७ ॥

मैं वह सबकुछ बन सकता जो हैं विभूतियाँ प्रभु की
मैं प्रस्तुत भी कर सकता जो समनुभूतियाँ विभु की ।
पर कभी नहीं बन सकता जीवात्मा मैं परमात्मा
शाश्वत स्वरूपगत अंतर मैं आत्मा राम परात्मा ॥

॥ ६८ ॥

पर क्या विडंबना नर की स्वंमेव ईश बन बैठा
दे अंह ब्रह्म का नारा अभिमान आसव में ऐंठा
सेवक होकर भी निज को माना विमूढ़ ने स्वामी
हो ब्याप्य स्वंय को ब्यापक माना यह उत्पथगामी ॥

॥ ६९ ॥

हो स्वंय अनीश्वर ईश्वर कहलाने लगा स्वंय को
हो धर्महीन धार्मिक सा पूजवाने लगा संवय को ।
होकर भी अपयश भाजन कहलाया स्व को यशस्वी
श्रीहत होकर भी पापी श्रीमान बन गया मनस्वी ॥

॥ ७० ॥

जो हो अनादि अज्ञानी मानकर स्वंय को ज्ञानी
पूजवाने लगा सभी से यह धर्मध्वज बक ध्यानी ।
होकर विषयों का लम्पट कहलाने लगा विरागी
अघवान जनम का भ्रमबश भगवान बना छलरागी ॥

।। ७१ ।।

मैं निरावरण निर्मम हूँ कोई आवरण न मेरा
मैं अलङ्करण धरती का कोई अलङ्करण न मेरा ।
होकर विशिष्ट फिर भी हूँ श्रीहरिका नित्य विशेषण
मैं दास नित्य राघव का उनका ही हूँ संश्लेषण ॥

।। ७२ ।।

मैं जन्ममरण से वर्जित मैं बढ़ता नहीं न घटता
मैं ह्रास–विकास विवर्जित मेरी दूरी न निकटता ।
मैं नाम रूप व्याकर्ता मैं रूपी मैं ही नामी
मैं भोक्ता मैं ही कर्ता मैं हूँ क्षेत्रों का स्वामी ॥

।। ७३ ।।

जग के झंझवातों से मैं हूँगा नही प्रभावित
शांपिक भीषण पातों से मैं हूँगा नहीं अनुभावित ।
मैं नित्य जीव नित्यात्मा मैं नित्य दास रघुवर का
मैं हूँ विमुक्त मुक्तात्मा मेरा नित्य भाव परिकर का ॥

।। ७४ ।।

मैं स्वामी नहीं बनूंगा सदा प्रभु का दास रहूँगा
उनकी करुणा का जूठन मैं नित सानन्द लहूँगा ।
मैं नहीं बनूँगा उद्धत मेरा विनम्रता भूषण
मैं निर्विकार निर्दूषण मेरे प्रभु दूषण दूषण ॥

।। ७५ ।।

यह जगत रंगशाला है कुछ भी न किसी से लेना
जन्मूंगा दानी बनकर सबको देना ही देना ।
निर्लेप रहूंगा जगमें मैं पद्मपत्र के जैसे
निर्भ्रांत चलूंगा मगमें उन्मुक्त बटोही जैसे ।।

।। ७६ ।।

श्रुतिविहित मुझे तीनों ऋण न कभी भी बाँध सकेंगे
संसाधन मुझे किसी क्षण न कभी भी साध सकेंगे ।
कामादि विकार जगत के दूषित न करेंगे मुझको
मायामय मरूत थपेड़े शोषित न करेंगे मुझको ।।

।। ७७ ।।

मैं तन न नहीं मन नाऽहम मैं चित्त न मति न अनीशा
मैं दास दास दासोऽहम मेरी यह नित्य मनीशा ।
मैं देवों का न ऋणी हूँ वे ऋणी रहेंगे मेरे
सपनों में ना छू पाएँगे ऋषिऋण पितृऋण पद मेरे ।।

।। ७८ ।।

जो सर्व भाव से प्रभु के श्रीचरण शरण में रहता
तीनों ऋण उसे न छूते वह सदा सुधा सुख लहता ।
मैं मुक्त सभी बंधों से अब नहीं बनूंगा बंदी
यह गर्भवास भी मेरा विकलांगों का है नांदी ।।

।। ७९ ।।

मैं उस शिव का हूँ नंदी जो किये न मुझ पर शासन
मैं नहीं किसी का बंदी मुझपर न कोई अनुशासन ।
फिर भी अनुशासन ही में मैं रहता हूँ निशि वासर
श्रुतियों का अनुशासन ही नित रहता मेरे ऊपर ॥

।। ८० ।।

सामान्य परिस्थिति में भी मैं निज संतुलन न खोता
प्रतिकूल परिस्थिति में भी मैं कभी अधीर न होता ।
मैं सुख-दुखों से ऊपर है अपना कौन पराया
यह झूठ प्रपंच विलसता प्रभु की माया की काया ॥

।। ८१ ।।

है भेद स्वरूपनिबंधन यह ईश जीव मध्यान्तर
है शेष जीव श्रीपति का शेषी हैं उसके ईश्वर ।
आत्मा अनेक उनके हैं गुणगत स्वरूप बहुतेरे
है पृथक स्वभाव चरित भी सबके गुणधर्म घनेरे ॥

।। ८२ ।।

जीवों के एक नियंता श्री हरि साकेत विहारी
वे ही हैं ब्रह्म सदाशिव अभिराम राम धनुधारी ।
श्रीराम सभी के स्वामी सभी आत्मा दास उन्हीके
यह भव नहिं मैं भूलूंगा पल-पल विश्वास उन्हींके ॥

।। ८३ ।।

मेरा अपराध न कुछ भी फिर भी यह शाप मिला है
जो मेरे हृदय विपिन में सुरतरू अभिराम खिला है ।
यह शाप नहीं है ऋषिवर प्रभु ने वरदान दिया है
इसमें विकलांग जनों का हरि ने आह्वान किया है ॥

।। ८४ ।।

संघर्ष करूंगा निर्भय बनकर अजेय मैं योद्धा
अष्टावक्र रहूंगा बनकर विकलांग पुरोधा ।
देखिये यह शाप पिताश्री मेरे आ रहा निकट धीरे से
मैं निरख रहा सुख को ही आता भवनीर तीरे से ॥

।। ८५ ।।

देखिये पिताश्री मेरे सब अवयव टूट रहे हैं
गर्भस्थ यातना के भी भय-बंधन छूट रहे हैं ।
यद्यपि माता को मेरे कारण अति पीड़ा होगी
दोनो की दुर्दशा लखकर तुम को भी व्रीड़ा होगी ॥

।। ८६ ।।

पर अब क्या कर पाओगे जब गेंद गया पाली से
कैसे रस लौटाओगे जो लुढ़क गया प्याली से ।
कर शाप वज्र का प्रहरण शत पत्र अंग हत डाले
फिर भी न समाप्त हुये हैं ऋषि कोप वह्नि के छाले ॥

।। ८७ ।।

शांत पापं ऋषिनायक अब शांत स्वरूप हो जाओ
लख अष्टावक्र तनय को अपना आक्रोश मिटाओ ।
मुझको कोई न कठिनता मैं हूँ अतीत इस तनसे
परिणाम देखकर निर्मम तुम्हीं दुखी रहोगे मनसे ॥

।। ८८ ।।

सच बोलो पूज्य पिताश्री मेरे देख देह के टूकड़े
क्या अनुभव नहीं करोगे अपने तुम निर्दय मुखड़े ।
ओ निरनुग क्रोश पिताश्री अवलोक बक्र मुख मेरा
क्या पंक सा नही फटेगा पबि सा निष्ठुर उर तेरा ॥

।। ८९ ।।

ले मुझ शिशु को गोदी में जब अष्टावक्र कहोगे
क्या सुत संकट ज्वाला से क्या निज उर नहीं दहोगे ।
वह कैसी कठिन परिस्थिति जहाँ आठों अंग कुटिल हों
विधि की यह कौन अनुष्ठित जहाँ सभी उपकरण जटिल हों ॥

।। ९० ।।

जैसे रखोगे ईश्वर मैं तो वैसे रह लूंगा
विधि की इस विडंबना को हँस-हँसकर के सह लूंगा ।
पबि को भी सरसिज दल पर किस विधि से सहन करेगा
देखे जग आज सुधाकर कैसे विषभार बहेगा ॥

।। ६१ ।।

देखें विकलांग हुआ मैं हुए अंग वक्र सब मेरे
जगती न भूल पाएगी ऋषिवर निर्दय कृत तेरे ।
माता भी बिलख रही है सुन दारूण शाप तुम्हारा
रो-रोकर निरख रही है संयम दृढ़ धैर्य हमारा ॥

।। ६२ ।।

तापस वटु यती उदासी शिर धुन-धुन सिसक रहे हैं
रोते खगमृग वनवासी केसरी भी ठिठक रहे हैं ।
भवितव्य यही है मेरी दूषण कुछ नहीं पिताका
हिम से जो सूखता पङ्कज क्यों वहाँ दोष सविता का ॥

।। ६३ ।।

जो विधिने भालपे मेरे लिखदी विकलांग समस्या
तो कैसे झुठलाएगी श्रीचरणों की भी तपस्या ।
यदि भाग्य में सौवीरक है पाए क्यों जीव सुधा को
जो मिला उसीसे बुझाना अब तो है उसे क्षुधा को ॥

।। ६४ ।।

प्रत्येक विधान प्रभु का मंगलमय ही होता है
यह तथ्य बिना समझे ही प्राणी शिर धुन रोता है ।
जो हुआ हुआ शुभ सबकुछ उसपर न मुझे कुछ कहना
जैसा विधान है प्रभुका उसमें ही सुख से रहना ॥

॥ ९५ ॥

मैं नीलकंठ सा द्विजवर यह शाप गरल पी लूँगा
बन अष्टावक्र जगत में रह गौरव से जी लूँगा ।
हे तात आपको अबसे मैं कभी नहीं कोसूँगा
सब भांति आपके मनको शुभकृत्यों से तोषूँगा ॥

॥ ९६ ॥

जो कुछ मैंने कह डाला यह प्रथम और अन्तिम है
भावी पीढ़ी की शिक्षा मर्यादा धर्म प्रथिम है ।
अब एक प्रार्थना मेरी हे तातचरण स्वीकारें
अन्यों के लिए न अब से यह जटिल शाप निर्धारें ॥

॥ ९७ ॥

यह प्रथम और अन्तिम हो ऋषिवर अभिशाप तुम्हारा
मिट जाए जिससे पलमें अवसाद मनुजका सारा ।
अन्यथा आपकी त्रुटिको इतिहास न स्वीकारेगा
अक्षभ्य मान इस क्षण को आसंसृति धिक्कारेगा ॥

॥ ९८ ॥

अष्टावक्रीय निवेदन विकलांग विकास बनेगा
भावुकतामय प्रतिवेदन भारत इतिहास बनेगा ।
अब पटाक्षेप हम करते इस परम कठिन नाटक का
मानवता उत्पीड़क का दानवता उद्घाटक का ॥

।। ९९ ।।

जो घटा श्रेष्ठ वह सब कुछ परमेश विधान यही था
विकलांगों के हित प्रेरक आगम आह्वान यही था ।
यह सर्ग समस्या का भी अन्तःप्रतिपाद्य मनोरम
छेड़ता ग्रीष्म में भी जो संगीत वसन्ती सरगम ॥

।। १०० ।।

काटों में ही तो खिलकर पाटल पाटल बनता है
कर्दम से ही तो मिलकर सरसिज सौरभ जनता है
पत्रावलि के अन्तर से छनकर चाँदनी विहँसति
शैवाल समावृत होकर सर में सरसिजिनी लसती ॥

।। १०१ ।।

कंटकवृन्द के बीच खिले अलिगुंजन को अनुकूल बने हम
पत्री के पत्र प्रहार सहे पशुओं के लिए प्रतिकल वने हम ।
माली की माला की शोभा बढ़ाकर भामिनी केश भाल दुकूल बने हम
जीवन की बगिया में अहरे शत शूल सहे फिर फूल बने हम ॥

।। १०२ ।।

राहुपरक होकरके जब होता उदित निशाकर
तब वह जन जन में भरता अकलंक प्रेम रस निर्झर ।
जब रुचिर रश्मिमय माली निहार चीड़कर आते
तब दर्शक मन कलिका को करके सहास सरसाते ॥

।। १०३ ।।

अतएव पिताश्री अपना अवसाद दैन्य अब छोड़ें
मंगलमय अध्यायों के सुश्लोक शोक तजि जोड़ें ।
निश्चित पहले से रहता प्रत्येक प्रश्न का उत्तर
बिन जाने उसे मनुज यह हो जाता व्यर्थ विकलतर ॥

।। १०४ ।।

इस जटिल समस्या का मैं सामना करूँ साहस से
निपटे धरधीरवनज भी वन की वनाग्निदाहक से ।
पीकर भी गरुअ गरल को मृत्युञ्जय नहीं मरेगा
वह नीलकंठ बनकर के जनता का दुरित हरेगा ॥

।। १०५ ।।

अब धीर धरें ऋषिनन्दन छोड़ें अपना यह क्रन्दन
करने आया अभिनन्दन यह आज आपका नन्दन ।
दे शाप आपने दारुण मेरा उपकार किया है
विकलांगजनों को इस मिष उत्तम उपहार दिया है ॥

।। १०६ ।।

प्रत्येक समस्या का है समाधान पूर्व से निश्चित
जिज्ञासा के हित उसकी हम करें पुण्यबल संचित ।
अन्याय अधर्म अनय से जब वर्जित चिन्तन होगा
तब समाधान अंकुर का संक्रान्ति से सिञ्चन होगा ॥

॥ १०७ ॥

अब करें प्रतीक्षा मेरी सत्वर बाहर आऊँगा
निज वक्रकरों से कोमल श्रीचरण परस पाऊँगा ।
रोएंगे नहीं पिताश्री लख अष्टावक्र तनय को
टेढ़ामुख भी चूमेंगे कर देंगे क्षमा अनय को ॥

॥ १०८ ॥

अष्टावक्र महर्षि वाक्य कह ये
ज्यौं हो रहे मौन थे
त्यौं ही विप्र कहोल के नयन भी
नीरन्ध्रवर्षी बने ।
सीमन्तोन्नयनीय वेदविधि भी
सम्पन्न प्रायः हुई
गाएं देव सभी कहोल सुत का
शार्दूल विक्रीडितम ॥

॥ श्रीराघवः शन्तनोतु ॥

॥ नमो राघवाय ॥

अष्टावक्र महाकाव्य–चतुर्थ सर्ग

“सङ्कट”

।।१।।

सङ्कटों का सर्ग अति अनिवार्य है इस प्रजापति सृष्टिमय महाकाव्यमें।
परख जाते हैं यही अच्छे बुरे शत्रु हित का यह परीक्षा केन्द्र है ॥

।।२।।

पाप प्रायश्चित होता है यहींशुद्ध प्राय चित्त होता है यहीं ।
कर्मकौशल का निकष भी है यहीं योगमहि भी कुपारिणामों की यहीं ॥

।।३।।

यदि न हो आगमन कर्मक्षेत्र में, विकट संकट का मनुज इतिहास में ।
अमर कैसे हो सकेगा फिर कहो, कब परीक्षा होगी उसकी बुद्धिकी ॥

।।४।।

फिर परीक्षा कौन नरके धैर्यकी, कर सकेगा सावधान तटस्थ हो ।
अनावरण महद् गुणों का फिर कहाँ, हो सकेगा साहसिक निर्णय कथम् ॥

।।५।।

यदि न सङ्कट में रहेगा सन्तुलित, मनुज सोम मयूख से सन्तत तुलित ।
किस प्रकार बनेगी फिर उसकी व्यथा, करुण कवि के काव्यकी करुणा कथा॥

।। ६ ।।

घिर गया संकटघनों से अब अहा, अर्भ अष्टावक्र का इतिहास भी ।
दमकने दम-दम लगी अब दामिनी, चपलचित्रारूप करुणा गामिनी ॥

।। ७ ।।

नभ-नभस्वत् स्वन स्वनित चित्कारता, सर्ग सङ्कट से सता ललकारता ।
मनुजता मन्थर गुहार लगा रही, चेतना को चीख चीख जगा रही ॥

।।८।।

अब प्रभाती मैं करूण चित्कार था, आज मूल्यों का कुविनियम हो रहा ।
वृति वात्यासी किसी उत्पात की सूचना भी विषमता से दे रही ॥

।।९।।

पर पुरन्दर ककुभ से कलकाकली, कुहुक कर कुढ़ती हुई कुछ कह रही ।
क्यों अकर्मठ कोसता निजभाग्य को, कर्म कौशल से बदल विधि लेख तू ॥

।।१०।।

हाथ पर धर हाथ मत रो बालवत्, ढूँढ़ वातायन वरेण्य विवेक से ।
घुट रहा क्यों घूंटकर उल्षण गरल, खिड़कियों को बन्द कर चहुँ ओरसे ॥

।।११।।

खोल मन्दिर के गवाक्ष गवेन्द्र ज्यों, उछल उद्यम कर अनघ आनन्द से ।
खोजले व्यायाम हित आराम तू, कर सपदि सत् साहसिक निर्णय अडिग ॥

।।१२।।

मत पड़ा रह भूमिपर अजगर सदृश, बन रहा क्यों मेदिनी का भार रे ।
गरजकर अधिकार ले नरकेसरी, अन्य की करूणापेक्ष्या पाप है ॥

।।१३।।

कौन तेरे मुखमें डालेगा कवल, अब न तू मातृस्तनन्धय बाल है ।
कर्मकर निष्काम कौशल से भरा जनम कर इस भारत भूमि में ॥

।।१४।।

वेदने भी कर्म ही करते हुए, शत् शरदपर्यन्त जीने को कहा ।
कर्म करना ही मनुज का धर्म है, कर्म से होना विरक्त अधर्म है ॥

।।१५ ।।

तज प्रमीला नयन उन्मीलित करो, निष्प्रमत्त विधेय कर्मों को करो ।
तज विकर्म विधर्म धर्मधुरीण हो, विश्वमय हरि धारणा हियमें धरो ॥

।।१६ ।।

इस उदित उन्मेषने अब कर दिया सुदृढ़ अष्टावक्र अर्भ विचार को ।
शापपवि ने तुरत विप्र कहोल के, कर दिया शिशु अंग अम्बुज अष्टधा ॥

।।१७ ।।

वक्र आठों अंग अब तो हो गए, सपदि सिमट अर्भवर कमठाण्डसा ।
अङ्ग गोलकार बने अलोल से, जननिमानुष को विलोलित कर रहे ॥

।।१८ ।।

एकतः दुःसह हुई तनु यातना, अपरत उत्साह दुर्भर हो रहा ।
उभय द्वन्दों में पड़ा शिशु का सुमन, स्वस्थ पर अस्वत्य दल सा डोलता ॥

।।१९ ।।

समय ज्यों–ज्यों आ रहा अभिवृद्धि का, घट रही त्यों त्यों वपुष की वृति थी ।
शरद पार्वण उडुप के अपराग सी पा रहा था अर्भतनु की दुर्दशा ॥

।।२० ।।

अष्टमग्रह ग्रस्त तनु राकेश सा जन्मलेगा अर्भ अष्टावक्र भी ।
दशम की करके प्रतीक्षा दश वरष वरषकर घनसा रहेगा निष्करण ॥

।।२१ ।।

इधर अष्टावक्र पर अन्याय से बढ़ रही जो विप्र मन में वेदना ॥
ऋषि कहोल न रह सके थे संतुलित कोसते रहते स्वंय को नित्य वे ॥

।।२२ ।।

हाथ कैसी नीच मेरी निठुरता मैं हुआ उस काल कितना था अधम ।
जो कि कर बैठा हृदय का ही स्वंय शाप भीषण वज्र से निर्मम दलन ॥

।।२३ ।।

क्या मनुजता का निदर्शन है यही ब्रह्मकुल का क्या यही आदर्श है ।
जिस क्षणिक आवेश में मैंने किया बाल हत्या का महादुष्कर्म है ॥

।।२४ ।।

भोगना अब तो पड़ेगा क्रूर फल, निज किये का व्यर्थ पश्चाताप है ।
बीज बोया यदि विषाक्त बबूल का, फिर कहाँ उपलब्ध होगा कल्पतरू ॥

।।२५ ।।

अब पीयूँगा गरल यह चुपचाप मैं, जल जरूंगा वह्नि पश्चाताप में ।
उष्ण दृग जल से हृदय को सींचकर, मरके भी जीता रहूंगा विश्व में ॥

।।२६ ।।

पाप ऋषि का कठिन फल देने लगा, मचा हाहाकार शांत अरण्य में
आ गया सब ओर से संकट समल, छा गई दारूण महा पदमय घटा ॥

।।२७ ।।

जो विपिन रहता सदैव हरा-भरा, कभी भी न दावाग्नि लगता था जहाँ ।
वही धू-धू कर विपिन, जलने लगा प्रलय ज्वाला जाल लीढ़ हुतास से ॥

।।२८ ।।

विहग वृंद कुरंग गण, जल-जल सभी सहज सहचर बन गए शिवभूति के ।
छोड़ वन वटु वानप्रस्थ भगे सभी, ऋषि कहोल के कुकृत्य की कर भर्त्सना ॥

।।२६ ।।
गरज कर भी मेघ गण बरसें नहीं, सूखकर प्राबिश हुआ यह ग्रीष्म सा ।
सूखकर कृषि भक्ष्य भी रक्षा हुई, साम शामन लक्ष्य भी रक्षा हुई ॥

।।३० ।।
इस अवर्षण ने महावन क्षेत्र में, घास भी न हरी–हरी रहने दिया ।
उड़ रही उस काल नभ में धूल थी, वह भी शव की राख से मिश्रित हुई ॥

।।३१ ।।
सूखकर नीवार दल फल मूल भी, हो गए रक्षा न रक्षा हो सकी ।
वन्य जीवन की प्रबल संकट गरल, खा गया हाहा विजन वन देश को ॥

।।३२ ।।
इस महा दुर्भिक्ष से भिक्षावृत्ति बटुवरों को भी न भिक्षा मिल रही ।
भूख से मारा मरा दुख से भरा भय भराकुल हुआ ऋषि परिवार भी ॥

।।३३ ।।
बूंद भर भी जल न पीने को वहां, रक्त तन का सूख कर्दम बन गया ।
शोक का उछवास मारुत कर रहा सर्प के भी बिना हवनी याग्नि को ॥

।।३४ ।।
क्षुधा पीड़ा से सभी मरने लगे, जो भी थे अवशिष्ट वन्य प्रदेश में ।
काल सा दुष्काल बदन पसार कर, खा रहा चर अचर को निर्भ्रांत हो ॥

।।३५ ।।
ब्रह्मकुल बनकर मधुर बोदन, वहाँ क्षत्रकुल हो सैंधवोदन ।
काल के गाल में अविराम गति से, जा रहे मृत्यु उपरोचन समान कृतान्त का ॥

।।३६ ।।
अब सुजाता बनी अधिक अधीर थी, कांपती संकट सहिष्णु समीर से ।
धैर्य धरकर जा समीप कहोल के, कोकिला सी कुहक कुछ कहने लगी ॥

।।३७ ।।
आर्यपुत्र निहार लो वन की दशा, काल बन दुष्काल सबको खा रहा ।
आज स्वाहा हो गया सर्वस्व है, हाय हाहाकार में कैसी व्यथा ॥

।।३८ ।।
एक मुट्ठी भी न अंधस है यहां, आर्यपुत्र कैसे चलाऊँ सद्म मैं ।
गेहली और देहनी हूँ, दीनता दीन मुझको देव दिन-दिन कर रही ॥

।।३९ ।।
पहन वल्कल ढँक कथवंचित अंग में नारिकुल लज्जा बचा लूंगी प्रभो ।
किंतु भोजन के बिना कैसे रहूं, है कठिन वडवाग्नि से जठराग्नि यह ॥

।।४० ।।
भूख से व्याकुल हुई सब इंद्रियाँ, पुष्प से सुकुमार अवयव सूख गए ।
शिथिल तनु आनन में लाटी लग गई, स्वान्त में दुःसह बुभुक्षा जग गई ॥

।।४१ ।।
यह महा दुर्भिक्ष अब कैसे मिटे, यही दुश्चिंता है मुझे खा रही ।
विगत निद्रा यह निरीह निशिथिनी उडुगणन व्यापार में ही जा रही ॥

।।४२ ।।
देव अब अविलंब कुछ उद्यम करें, अन्यथा होगा अनय तांडव प्रभो ।
आप कुलपति इस विपिन परिवार के, आप को ही सब यहाँ करणीय है ॥

।।४३ ।।

सोचिये मत हाथ धरकर माथ पर,
आज कोई मार्ग अनुपम मृग्य है।
दुरित पावक में सभी हैं जल रहे,
श्यामघन का आगमन अनिवार्य है ॥

।। ४४ ।।

जनक अध्वर में महोदय जाईये,
अवस कुछ नृप को विवश कर लाईए।
फिर हंसे क्षुद्दाम तापस वृंद भी,
फिर लसे बनदेवियों की सर्जना ॥

।। ४५ ।।

हो पुनर्बलि वैश्वदेव विदिप्ति से,
विपिन प्रांतर शस्य–श्याम हरा–भरा ।
फिर पिएँ सरसिज पुनीत पराग को,
सरसियों में सरस भृंग ससंग हो ॥

।। ४६ ।।

जनक नृप की भुवन विदित वदान्यता,
दूर कर देगी विपिन दुर्भिक्ष को ।
हम पुनः सानंद मुनि शिशु वृंद का,
अन्नप्राशन कर सकेंगे प्रेम से ॥

।। ४७ ।।

अब सुजाता सह न पायेगी अधिक,
प्रसव संकट में भयाक्त विपन्नता ।
अब न होगा सह्य मुझसे हे ऋषे,
खल दरिद्रा का महातांडव अधम ॥

।। ४८ ।।

उटज में श्यामाक का कण भी नहीं,
हरिण शावक का कथं पोषण करूं ।
है नहीं निवार का प्रभु पाक भी,
अब कडंगर भी यहां दुष्प्राप्य है ॥

।। ४९ ।।

यद्यपि यांच्या है निषिद्ध गृहस्थ को,
किंतु भिक्षा अन्न हंतु विधेय है ।
भिक्षुता से यदि हरें दुर्भिक्ष को,
तब बनेगी भिक्षुता द्विज आवरण ॥

।। ५० ।।

जाइये मिथिला अशिथिला बुद्धि ले,
कर पराजित वाद में बुधवृंद को ।
विजय माला से विभूषित वक्ष कर,
स्वस्तिमान बन लौट वन को आईये ॥

।। ५१ ।।

सुन कहोल गिरा सुजाता की शुभा,
मानकर भवितव्यता निज की यही ।
सोचने गंभीर हो मनमें लगे,
नमित लोचन हाथ रखकर वक्षपर ॥

।। ५२ ।।

क्या विधाता अब तुम्हें करणीय है,
क्या नया इतिहास तुमको लेख्य है।
दे रहा अब स्वाभिमान तिलांजली
ऋषि कहोल कुहू निशामें ज्यों शशि ॥

।। ५३ ।।

गृहिणी का आग्रह विपिन की दुर्दशा,
परिस्थिति की विषमता धनहीनता ।
सभी युगपद विवस मुझको कर रहे,
अति विगर्हित याचना के कार्य में ॥

।। ५४ ।।

यदि न देता शाप अष्टावक्र को,
कर रहा जो अनयका प्रतिरोध था ।
तो न आती आज ऐसी दुर्दशा,
जो किया वह तो पड़ेगा भोगना ॥

।। ५५ ।।

यदि न जाऊँ याचना हित नृपसदन
तो मरें अवशेष जन भी भूख से ।
यदि बनूँ भिक्षुक तो आहत हो अहो
मुझसे मेरा स्वाभिमान ललाम हो ॥

।। ५६ ।।

हन्त हा अब जा रहा मिथिलापुरी
कुचल पद से स्वाभिमान पयोज को ।
जीतकर नृपवन्दियों को वाद में
बन्दि विरुदावलि करूँगा अवश्य मैं ॥

।। ५७ ।।

चल पड़े मिथिला कहोल विचार यों
शिथिल मन मिथिला पुरी की ओर थे ।
पहुँच तिरहुत हुत हुताशन भूपसे
पा सरस सम्मान हिय हरषित हुए ॥

।। ५८ ।।

विबुधवर वारूणि वहाँ बंदी बना
पूर्व पक्षी की निभाता भूमिका ।
कर निरुत्तर भूसुरों को वारि में
मग्न करता विगत नाविक नाव ज्यों ॥

।। ५९ ।।

विधिवशात् अर्थार्थी विप्र कहोल का
पड़ गया पाला उसी बन्दीन्द्र से ।
निमिष में ही बन्दीवर की वाग्मिता
प्रखर प्रतिभा से प्रतिष्ठित हो गई ॥

।। ६० ।।

बन्दीवर की परम प्रातिभ चातुरी
आतुरी कर मति महीसुर वर्य की ।
गरज कर कण्ठीरवी सी कण्ठ में
बन्ध हित निरबन्ध से बन्धित हुई ॥

।। ६१ ।।

जरद्गव ज्यों कलिल दलदल में फँसे
आज दिखते विवश विप्र कहोल थे ।
वन्दीवर्य प्रगल्भता भारी पड़ी
मूकता ऋषिकी विरस लघुता लगी ॥

।। ६२ ।।

बाँध वारुण पाश में अतिरोष से
कर प्रचुर परिभाष विप्र कहोल का ।
कलित कश्मल मलिन जल कासार में
विहस बन्दीने सहेल डुबो दिया ॥

।। ६३ ।।

यातना भोक्तव्य थी ऋषिवर्य को
इसीलिए उनके न निकले प्राण थे ।
मरण जीवन के कठिन संघर्ष से
जूझना ही अब विकल्प अकल्प था ॥

।। ६४ ।।

परिजनों की चिर प्रतीक्ष्या यामिनी
अन्ततोगत्वा विसर्जित हो गई ।
स्पष्ट सरगम छिड़ गया उस गीतका
जो न अभिमत था न आशा केन्द्र था ॥

।। ६५ ।।

क्या विधित्सित था विधाता का अहो
वह किसी के था नहीं संज्ञान में ।
मात्र क्रन्दन एक सबके हाथ था
अति विकट संकट सभी के साथ था ॥

।। ६६ ।।

अब सुजाता भी अधिक निकपाय थी
चीखती अबला अनघ असहाय थी ।
एकतः पीड़ा प्रसव का लीन थी
अपरतः ब्रीड़ा वियोजक कान्त की ॥

।। ६७ ।।

युगल तटिनी सङ्गभाम्बु समान था
हो रहा चेतस् सुजाता का तरल ।
रो न सकती थी करूण गंभीर हो
जब कि हंसना उससे कोशों दूर था ॥

।। ६८ ।।

इधर आश्रम की दशा दयनीय थी
उधर थी दारूण प्रसव की वेदना ।
युगल पक्ष संभालना अनिवार्य था
किन्तु हा कितना कठिन यह कार्य था ॥

।। ६९ ।।

एक सात्विक तापसी महिला अनघ
बीच थी दो द्वन्द दुर्गों के खड़ी ।
श्रान्त आश्रम की विपद् एक ओर थी
तनय पति संकट खड़ा अपरत्र था ॥

।। ७० ।।

पर पिता से धैर्यधन संबल उसे
जो मिला था पारिबर्ह स्वरूप में ।
अब सुजाता पा उसीका दिव्यबल
इस निकष में भी सफलता पा सकी ॥

।। ७१ ।।

जन्म अष्टावक्र ने वन में लिया
वक्र आठों अंग थे उनके दिखे ।
मातृ वत्सलता समाकृन्दित हुई
मेंदिनी भी रत्न से नन्दित हुई ॥

।। ७२ ।।

देख अष्टावक्र शिशु को जन्म से
करुण हाहाकार कानन में हुआ ।
पर उसी क्षण वियत में उत्साह से
श्रोत स्वाहाकार भी सुख से हुआ ॥

।। ७३ ।।

इधर ऋषि के परिजनों के नेत्र थे
वरसते नीरन्ध्र नीर वलाहकी ।
उधर विवुध वधूटियाँ नन्दन कुसुम
बरस कर सानन्द मंगल गा रही ॥

।। ७४ ।।

इधर माता की उदार सहेलियाँ
निरखि शिशु को दुख से छाती पीटती ।
उधर प्रमुर्दित किम्पुरुष गन्धर्व गण
प्रणव तूर्य मृंदग वाद्य बजा रहे ॥

।। ७५ ।।

कच्छ पाण्डाकार शिशु को देखकर
बढ़ रहा इस ओर वन्य विशाल था ।
उधर उमंगा उत्ससुर प्रासाद में
लसित ललित ललाम शास्त्र प्रसाद था ॥

।। ७६ ।।

दयित की करती प्रतीक्षा ही रही
शुचि सुजाता जात जातक कर्म हित ।
किन्तु वह तो दिवा स्वप्न समान थी
परावर्तन कान्त का अति दूर था ॥

।। ७७ ।।

हँस रही वहिंरग में रिषियोसिता
पुत्र अष्टावक्र के अवतरण से।
अन्तरंग परन्तु उसका रो रहा
अश्रुजल थी पी रही चुपचाप वह ॥

।। ७८ ।।

पिता उद्दालक परिस्थिति को समझ
सान्त्वना देने सुता को आ गये ।
पोंछ वल्कल से दुहित्रि नयनाम्ब को
करुण हो बोले रहस्य मयी गिरा ॥

।। ७९ ।।

जात कर्म करूँगा मैं ही शास्त्रतः
अव सुजाते यदपि यह दोहित्र है ।
तदपि वत्से वत्स की भवितव्यता
की न जा सकती किसी से अन्यथा ॥

।। ८० ।।

प्रति समस्या का सुनिश्चित हल सुते
पूर्व से रहता विधात्रि विधान है ।
अज्ञ जीव उसे जाने वृथा
पटकता है हाथ पाँव विमोह से ॥

।। ८१ ।।

अव कहोल न शीघ्र आयेंगे यहाँ
वे पराजित जनक बन्दी से हुये ।
उभयथा वे वँध गये है विवश हो
कर्म फल से और वारूण पाश से ॥

।। ८२ ।।

जरद गव से फंसे आज कहोल हैं
शास्त्रदल दल में तथा अघपंक में ।
निकलना उनके लिये उतना कठिन
कलिल से जितना विकल पद धेनु का ॥

।। ८३ ।।

यह रहस्य रहस्य ही यदि रह सके
तव तनय का फिर तो अति कल्याण है ।
मसल देगा अन्यथा पवि पात यह
वारटेय वरेण्य मन वन जात को ॥

।। ८४ ।। (गीत)

मौन ही रहना उचित है, गौण ही रहना उचित है।
द्रुहिण द्रोह विडम्बना में नियतिका लख चण्डताण्डव,
गरल से मिश्रित हुआ, चख कृति विखण्डित खण्ड खाण्डव ॥
निरख उद्भव भग्न वैभव कुछ नहीं कहना उचित है । मौन0

चन्द्र भी है वह्निसर्जक यह किसी को ज्ञान था क्या
भानु भी है पद्मभर्जक यह किसी को भान था क्या ।
देख विधि विपरीत सबकुछ शान्ति से सहना उचित है ॥ मौन0

उषा भी होती अँधेरी कौन पहले जानता था
दिशा होती घन घनेरी कौन पहले मानता था ।
सब अपूर्व निहार हरि का गूढ़ गुण गहना उचित है ॥ मौन0

चक्रवात विलोक भीषण नम्र रह करनी प्रतीक्ष्या
जान परिवर्तन विलक्षण मूल्य की करनी समीक्ष्या ।
सोच निज प्रतिकूलता क्षण कृत्य निर्वहना उचित है ॥ मौन0

॥ ८५ ॥

पितृ पराभव ज्ञान इस नवजात का
अभ्युदय बाधित करेगा हे सुते ।
गुप्त ही इस दुर्विषह अभिशाप को
हम रखेंगे यही आर्य निदेश है ॥

॥ ८६ ॥

समय के अनुसार ढलजाना शुभे
सफलता का परम मङ्गल मन्त्र है ।
चक्रवातों में भी वह ढहता नहीं
उस समय जो विटप रहता नम्र है ॥

॥ ८७ ॥

अकड़ने बाला सदा कटता रहा
जो झुका उसने झुकाया विश्व को ।
बाँस कट कटकर फटा फट्टी बना
वेलि झूककर घवल सौधो पर चढ़ी ॥

॥ ८८ ॥

पुत्रि अव वर्धिष्णु अष्टावक्र को
प्रेम से पालो प्रयत्न अनेक कर ।
भूलकर न इसे अभाव कुपङ्क में
मग्न होने दो महार्घ ललाम ज्यों ॥

।। ८६ ।।

यदि किसी को भी स्वकीयाभाव की
हो विषम अनुभूति किसी के कृत्य से ।
तब कहाँ उसकी रही सेवा विधा
मनुज का कौलीन वह तो बन गया ॥

।। ९० ।।

अतः सेवा में स्वमानस सन्तुलन
सतत सेवक को भी रखना चाहिए ।
नहीं सेवक का कदापि कृतज्ञ है
सेव्य सेवा का जो अवसर दे रहा ॥

।। ९१ ।।

ज्यों निरवयव रूप शालग्राम का
पूज्य होता स्वर्ण सम्पुट में सदा ।
मानकर त्यों ही सतत विकलांग को
स्नेह सम्पुट में निहित कर पूजिए ॥

।। ९२ ।।

निराकार स्वरूप ज्यों शिवलिङ्ग का
सभी करते श्रद्धया अभिषेक हैं ।
त्यों ही अब विकलांग का सब मिल करो
स्नेह जलाभिषेक अब सम्मान की ॥

॥ ९३ ॥

भार है विकलांग क्या पविार का
क्या उपेक्ष्या पात्र वह सकलाङ्ग का ।
जगत को जर्जरित करदेगी झटिति
यह विषम अवधारणा कुसमाज की ॥

॥ ९४ ॥

मत निरादर करो अब विकलांग का
मूर्ति है यह साक्षात् जगन्नाथ की ।
ईश ज्यों विकलांग की सेवा करो
इस सुकृत से निजभवन सुख से भरो ॥

॥ ९५ ॥

मत रुलाओ किसी भी निजकृत्य से
स्वप्न में भी भूलकर विकलांग को ।
अन्यथा विकलांग का दृगविन्दु भी
बज्र बनकर दलित कर देगा तुम्हें ॥

॥ ९६ ॥

सुन सुजाता तात का उपदेश यह
स्वस्थ मन से हो गई पुलकाङ्गि का ।
गोद लेकर पुत्र अष्टावक्र को
चूम मुख वत्सल सुरस से पग उठी ॥

।। ९७ ।।

विप्र उद्दालक उदात्त स्वभाव से
श्राद्ध नान्दिमुख सुजातक कर्म भी ।
शास्त्रतः सम्पन्न कर दौहित्र का
तात की सम्यक् निभाए भूमिका ॥

।। ९८ ।।

अष्टवक्र सभी थे कहते बालको
किंतु अष्टावक्र उद्दालक कहे ।
है भले यह वक्र शिशु अष्टाङ्ग से
प्रकृतियाँ आठों नहीं पर वक्र हैं ॥

।। ९९ ।।

भूमि – जल – पावक – समीरण औ गगन
मन मनीषा अहं शिशु के ये सुधन ।
रह सदैव अवक्र शिशु दुःख हर रहे
नाम इसका अतः अष्टावक्र है ॥

।। १०० ।।

अष्टौ अवक्रा यस्य तथा नाम की
यह निरुक्ति समास शुचि बहुव्रीहि से ।
अर्थ अष्टावक्र का अब जानिए
नामके अनुरूप गुण पहचानिए ॥

।। १०१ ।।

नहीं संज्ञा मान अष्टावक्र को
दीर्घ करिए व्यर्थ पाणिनी सूत्र से ।
अष्टमें प्रश्लेष है आकार का
जो कि नञ से वक्र पूर्व समस्त है ॥
(न वक्रा अवक्रा, अष्टौ अवक्रा यस्य सः अष्टावक्रः)

।। १०२ ।।

यथा अष्टावक्र को थे पालते
विप्र उद्दालक उदात्त स्नेह से ।
तथा माता भी सुजाता वत्सला
नयन गोलक ज्यों तनय को लालती ॥

।। १०३ ।।

कठिन कच्छप अण्डसा तनु गोल था
तनय का सिकुड़ा हुआ पितृशाप से ।
लख सुजाता मातृगुण वात्सल्य से
जाके रोती थी करूण एकान्त में ॥

।। १०४ ।।

पर न कहती थी किसी से वेदना
गौप्यता के भङ्गभय से भामिनी ।
सिसक चुपके से सलिल दृग के सती
घूँट करके थी बुझाती प्यास को ॥

।। १०५ ।।

निरख घुटनों से विहरते अन्यको
अनुकरण करता था अष्टावक्र ज्यों ।
त्वरित गिर पड़ता ढनक असहाय हो
लख दशा तरू भी सिसक रोते वहाँ ॥

।। १०६ ।।

पर सुजाता गोद लेकर पुत्रको
पोछ अंचल से वपुष की धुल को ।
वदन मारूत से मिटाती वेदना
फूंक जजनी की तनयकी औषधी ॥

।। १०७ ।।

इस प्रकार अनेक सफल प्रयत्न कर
मातृ मातामह महामह मान दे ।
पाल अष्टावक्र को सब हर लिए
कठिन सङ्कट कालकैतव कष्ट भी ॥

।। १०८ ।।

निज जननि मातामह मनोहर वत्सलामृत रस मिला
सानन्द अष्टावक्र का अनुराग अम्बुज भी खिला ।
अब गया संकट काल जो था व्याप्त शिशु दश वर्ष में
अब जगेगा सङ्कल्प सम्बल ज्यों उदित उत्कर्ष में ॥

नमो राघवाय

॥ श्रीराघवः शन्तनोतु ॥

॥ नमो राघवाय ॥

अष्टावक्र महाकाव्य–पंचम सर्ग

“सङ्कल्प”

॥ नमो राघवाय ॥

।। १ ।।

सङ्कल्प सुगुण परमेश्वरका
सङ्कल्प सर्जना का बल है ।
सङ्कल्प सत्यका प्राणमन्त्र
सङ्कल्प मनुजका सम्बल है ॥

।। २ ।।

सङ्कल्प शक्ति है ईशाना
शाश्वती शासिका ईश्वर की ।
सङ्कल्प भक्ति है भागवती
यह भार्ग्यविभा नर नश्वरकी ॥

।। ३ ।।

सङ्कल्प मनुजता का भूषण
सङ्कल्प सफलता की कुंजी ।
सङ्कल्प श्रेय है निर्दूषण
सङ्कल्प प्रेय की भी पुंजी ॥

।। ४ ।।

सङ्कल्प नियत्ता का नियमन
सङ्कल्प प्रेरणा मानव की ।
सङ्कल्प गीतका राग यमन
सङ्कल्प ईरणा दानव की ॥

।। ५ ।।

सङ्कल्प कल्पना का सर्जक
सङ्कल्प विमलतम मनोधर्म ।
सङ्कल्प शक्ति का है अर्जक
सङ्कल्पजनित है श्रौतकर्म ॥

।। ६ ।।

पर यदि सङ्कल्प सुसात्विक हो
यदि उसका मूल तपस्या हो ।
वह सत्यं शिवं तभी होता
यदि उसका प्राण नमस्या हो ॥

।। ७ ।।

यदि निश्चय ही दक्षिणकर हो
धर्मानुराग हो उसका जल ॥
सत्कर्म चिकीर्षा बने कुशा
सङ्कल्प हो सके तभी सफल ॥

।। ८ ।।

यदि वाचिक पुनरावृति नहीं
सङ्कल्प पुरुष का पौरुष हैं ।
सङ्कल्प शक्ति सङ्कल्प भक्ति
सङ्कल्प मनोगज अङ्कुश है ॥

।। ९ ।।

कोई भी कार्य पूर्ण कैसे
होगा सात्विक सङ्कल्प विना ।
परमात्मा में भी नहीं जगती
ईच्छा सङ्कल्प प्रकल्प विना ॥

।। १० ।।

मानस भी शिवसङ्कल्प रहित
होता संसृति में निन्दित है ।
फिर वह ही शिवसङ्कल्प सहित
हो जाता जगमें वन्दित है ॥

।। ११ ।।

यद्यपि ऋषि अष्टावक्र जने
विकलांग अल्प कमठाण्डाकृति ।
फिर भी न कभी विकलांग हुई
उनकी अनल्प सङ्कल्प प्रकृति ॥

।। १२ ।।

कभी हार न मानी ऋषिसुतने
विकलांगित कुपरिस्थितियों से ।
जीवन के कटु संघर्षों से
सामाजिक विषम स्थितियों से ॥

।। १३ ।।

यह दैवयोग ही था ऋषिका
मातुल भी जन्मा समवयस्क ।
विख्यात नाम से श्वेतकेतु
तेजस्वी सात्विक शुचि मनष्क ॥

।। १४ ।।

खेलते युगल थे एकसाथ
सुसखा ज्यों मातुल भागिनेय ।
सकलांग एक विकलांग एक
पर दोनों में न भिदा प्रमेय ॥

।। १५ ।।

उद्दालक ऋषि भी पौत्र पुत्र
दोनों का सम्मति से पालन ।
मनोवैज्ञानिकता से करते थे
सावधान होकर लालन ॥

।। १६ ।।

विकलांग और सकलांग युगल
यद्यपि थे दोनों संग पलते ।
सम्मति के सोचे में दोनों
संस्कारों में युगपद ढलते ॥

।। १७ ।।

व्यवहार जगत में पौत्र पुत्र से
अधिक प्रीतिकर होता है ।
मूल से ब्याज पर प्रेम अधिक
यह जगका भाव निसोता है ॥

।। १८ ।।

पर क्या पुत्र का ही पुत्र पौत्र
पुत्री का पुत्र न पौत्र कहो ।
यह भ्रांतधारणा है जन की
है यह व्याकरण विरुद्ध अहो ॥

।। १९ ।।

वस्तुतः युगल के पुत्र पौत्र
समशील युगल ही होते हैं ।
दोनों कहलाते नाती हैं
दोनों कहलाते पोते हैं ॥

।। २० ।।

यदि श्वेतकेतु मेरा सुपुत्र
तो अष्टावक्र पुनीत पौत्र ।
पुत्र से पौत्रपर प्रेम अधिक
शुचि पक्षपात शुभ इहामुत्र ॥

॥ २१ ॥

है श्वेतकेतु सकलांग यदपि
विकलांग है अष्टावक्र बाल ।
फिर भी उसकी प्रतिभा अनुपम
सङ्कल्पशक्ति अद्भुत रसाल ॥

॥ २२ ॥

यद्यपि शरीर परिस्थिति से
अति अक्षम अष्टावक्र तो ।
फिर भी साङ्कल्पिक क्षमता से
सक्षमको भी करता सशोक ॥

॥ २३ ॥

जो कार्य अनेक प्रयासों से
सकलांग नहीं कर पाता है ।
वह अष्टावक्र एकक्षण में
करके विकलांग दिखाता है ॥

॥ २४ ॥

विकलांग भले यह शिशु तनसे
पर मन इसका विकलांग नहीं ।
इसके आयामों को शत-शत
छू पायेंगे सकलांग नहीं ॥

।। २५ ।।

है वर करोड़ सकलांगों से
यद्यपि वराक विकलांग हुआ ।
सङ्कल्पों से अष्टाङ्गुल तनु
हो अष्टावक्र ने व्योम छुआ ॥

।। २६ ।।

स्पर्धा में भी सकलांगों से
विकलांग सदा रहता आगे ।
इसके सङ्कल्पों के समक्ष
सब सक्षम भी धीरज त्यागे ॥

।। २७ ।।

जो कठिन खेल विकलांग बाल
नहीं खेल पा रहे सपनों में ।
उन्हें अष्टावक्र खेलकर के
विष्मय भरता है अपनो में ॥

।। २८ ।।

यह जनश्रुती कितनी सार्थक
ईश्वर जिससे कुछ लेते हैं ।
अन्यों की अपेक्षा उस जनको
भगवान बहुत कुछ देते हैं ॥

।। २९ ।।

विकलांग पूर्वकृत कर्मों के
भोगता हुआ भी फल प्रचण्ड ।
यदि स्वयं नहीं उद्दण्ड बने
तो पा सकता वैभव अखण्ड ॥

।। ३० ।।

यद्यपि सकलांगों से अनेक
ठोकर यह बालक खाता है ।
फिरभी कभी अष्टावक्र नहीं
रोता न कभी पछताता है ॥

।। ३१ ।।

शिशु क्रीड़ाओं में सकलांगों से
खाकर भी मुक्के धक्के ।
शिशु अष्टावक्र छुड़ा देता
प्रतिउत्तर मे सबके छक्के ॥

।। ३२ ।।

यह असंभवों को भी पलमें
संभव करके दिखलाता है ।
सकलांग बालकों को भी यह
सङ्कल्पसूत्र सिखलाता है ॥

।। ३३ ।।

क्या रिक्त असंभव शब्द से है
हे विधि अष्टावक्रीय कोष ।
इसका सङ्कल्प निरख करके
मेरा मन होता कलित तोष ॥

।। ३४ ।।

छोटी बड़ी सभी स्पर्धाओं मे
शिशु सकलांगों को जीत जीत ।
यह स्वयं अजेय पुस्कृत हो
रहता प्रसन्न मानस अभीत ॥

।। ३५ ।।

सौ बार सुनाने पर भी जो
सकलांग न श्रुति सिख पाता है ।
वह एकवार सुन कर भी
अष्टावक्र कण्ठ कर जाता है ॥

।। ३६ ।।

विकलांग न अष्टावक्र सभी
सकलांग बाल विकलांग मूढ़ ।
कर रहे निरर्थक ईर्ष्या हैं
बिन जाने इसके गुण निगूढ़ ॥

।। ३७ ।।

स्पर्धा है सद्‌गुण छात्रें का
पर ईर्ष्या करना महादोष ।
ईर्ष्या डायन है निर्बलता
यह मानवता रिपु पापकोष ॥

।। ३८ ।।

अहमहमिकया करके धावन
गन्तव्य प्रथम पाना गुण है ।
पर गिरा किसीको प्रथम प्राप्ति
यह तो धावक का अवगुण है ॥

।। ३९ ।।

पूर्वतः विनिर्मित स्वर्णभवन
कर तहस् नहस् उस भूतल पर ।
बालुगृह रच उसे हेमभवन
कहना क्या होगा श्रेयष्कर ॥

।। ४० ।।

प्रातिभ क्षेत्र में आरक्षण
न कदापि राष्ट्रहित में समुचित ।
यह घोर निरादर प्रतिभा का
अवनति का पथ अतिशय अनुचित ॥

।। ४१ ।।

प्रतिभा की कोई जाति नहीं
प्रतिभा का कोई देश नहीं ।
यह देश काल से ऊपर है
प्रतिभा का कोई वेश नहीं ॥

।। ४२ ।।

रह अपरिच्छिन्न परिस्थिति से
प्रतिभा प्रतिभाषित होती है ।
सङ्कल्प शूक्ति से प्रकट हुई
प्रतिभा एक अनुपम मोती है ॥

।। ४३ ।।

यदि सात्विकता शुचिता दृढ़ता
हो साधक के सङ्कल्पों में ।
तो परमेश्वर भी आजाते
नरके सुपुनीत प्रकल्पों में ॥

।। ४४ ।।

यद्यपि शिशु अष्टावक्र विकल
अतिशय आठों अंगों से है ।
फिर भी अद्भूत प्रतिभा से यह
संयुक्त विरत संगों से है ॥

।। ४५ ।।

यद्यपि सुत श्वेतकेतु औरस
सुन्दर सकलांग दुलारा है ।
फिर भी अष्टावक्र पर अहो
अतिशय अनुराग हमारा है ॥

।। ४६ ।।

तत्त्वमसि तत्व जो श्वेतकेतु को
मैं नववार पढ़ाकर भी ।
समझा न सका कर विविध युक्ति
वेदान्त रहस्य सिखाकर भी ॥

।। ४७ ।।

उसे अष्टावक्र शकृत् सुनकर
शुचि सात्विक धृति से धारण कर ।
सब समझ गया क्षणभर में ही
कर लिया ब्रह्म को दृग्गोचर ॥

।। ४८ ।।

उपदेशक होगा यह भविष्य में
अष्टावक्र सुगीता का ।
मिथिलेश सभा का भूषण बन
यह देशिक होगा सीता का ॥

।। ४९ ।।

टेढ़ा लख आठों अंगों से
इसे अष्टावक्र फिर भी न कहो ।
यह अष्टाऽवक्र प्रकृति से है
नमता इसे कालिक चक्र अहो ॥

।। ५० ।।

इसकी प्रतिभा का करो मान
सामाजिक इसे प्रतिष्ठा दो ।
यह अष्टावक्र तिलक ऋषिकुल का
इसे साङ्कल्पिक निष्ठा दो ॥

।। ५१ ।।

यों कह हो गए सजल लोचन
दौहित्र देख ऋषि उद्दालक ।
मातामह स्नेह सुधावापी में
पला द्विजवर मराल बालक ॥

।। ५२ ।।

दशमस्त्वमसिके सुचिन्तन में
दश वर्ष बालवर के बीते ।
पर रहे अभी सङ्कल्प कलश
सफलता सुधा से ही रीते ॥

।। ५३ ।।

भारत इतिहास सुधाम्बर में
होना था उदित नवल पूषा ।
सङ्कल्पानूरू सारथी से
हो चली अरुण स्वर्णिम ऊषा ॥

।। ५४ ।।

अब अष्टावक्र वक्र बालक का
आया दशम सुजन्म दिवस ।
उद्दालक ने बँटवाये वटुओं को
वल्कल नीवार अवस ॥

।। ५५ ।।

बज उठी बधाई आश्रम में
मुनिकन्यायें मङ्गल गाईं ।
शिशु अष्टावक्र को नमन हेतु
माता मातामह ढिग लाईं ॥

।। ५६ ।।

ले गोद पौत्र को उद्दालक
मुख चूम दुलार लगे करने ।
वत्सल वारान्निधि लहरों से
करुणामय हृदय लगे भरने ॥

॥ ५७ ॥

शिर पर कर सरसिज परस परस
हरषित दौहित्र दुलार रहे ।
मानो मध्य मिहिर रसरश्मिहार से
वनरुहबाल संवार रहे ॥

॥ ५८ ॥

लख श्वेतकेतु अष्टावक्रोपरि
तातचरण का पक्षपात ।
झुलसा ईर्ष्या कुहिमानी से
हेमन्त में जैसे पङ्कजात ॥

॥ ५९ ॥

यह अष्टावक्र विकल तनु भी
क्यों बना पितुका वात्सल्यपात्र ।
क्यों मसक छू रहा अम्बरको
क्यों शिरपर रज चढ़ा अल्पमात्र ॥

॥ ६० ॥

अष्टधा विप्रसुत विकलांगित
सकलांगों से स्पर्धा करता ।
पैपीलिकेय कैलाश शिखर
छूनेको मुधा साहस धरता ॥

॥ ६१ ॥

किस कारण मुझसे अधिक पिताश्री
इसपर करते पक्षपात ।
क्यों कमलजनक का आज हो रहा
स्नेह केन्द्र यह कुमुदजात ॥

॥ ६२ ॥

अत एव आज मैं भागिनेय का
करूँ तीव्रतम कटु विरोध ।
अधिकार व्यतिक्रम का जिससे
इसको भी हो परिणाम बोध ॥

॥ ६३ ॥

रद श्वेतकेतु के कड़क उठे
औ दशन वसन भी फड़क उठे ।
उसके मानस में ईर्ष्या के
अगणित स्फुलिङ्ग भी भड़क उठे ॥

॥ ६४ ॥

तन गई कुटिल भृकुटी तत्क्षण
बोला द्विजसुत करके विरोध ।
मनो धैर्यकदन हित प्रस्तुत था
कालानल सम ऋषितनय क्रोध ॥

।। ६५ ।।

बोला मातुल लख भागिनेय को
पितुकी गोदी में बैठा ।
जो स्पर्धा कर सकलांगों से
विजयी बन वैभव में ऐंठा ॥

।। ६६ ।।

रे अष्टावक्र विनोद छोड़
यह तेरे पितुकी गोद नहीं ।
उठ तात गोद से बैठ भूमिपर
समुचित तुझे प्रमोद नहीं ॥

।। ६७ ।।

जानता नहीं क्या तू बालिश
उद्दालक तेरे तात नहीं ।
तू कण्टजात कुसुमपाटल
तू माधवजनि वनजात नहीं ॥

।। ६८ ।।

तू उस लतिका का कुटिल प्रसव
जिसका कोई आधार नहीं ।
तू उस वनिता का वत्सल भव
जिसका कोई शृंगार नहीं ॥

।। ६९ ।।

तू व्यर्थ डींग हाँकता रहा
अपने झूठे संकल्पों की ।
वस्तुतः तुम्हारी पुंजी है
नैराश्थ विहास्य विकल्पों की ॥

।। ७० ।।

विकलांग जानकर क्षमा किया
सकलांगों ने तुमको अब तक ।
पर शिरपर चढ़ती धूली क्षम्य
होगी सुधियों को भी कब तक ॥

।। ७१ ।।

सकलांगों का विकलांगों से
है दुर्निवार्य शाश्वतिक वैर ।
चुपचाप बैठजा चरणहीन
कैसे सकता वारीश तैर ॥

।। ७२ ।।

नभगमन निपुण अवि धोरणको
कैसे लूला छू पाएगा ।
कैसे कलहंस भक्ष मुक्ता
उन्मुक्त करट खल खाएगा ॥

।। ७३ ।।

मैं श्वेतकेतु तेरा मातुल
उद्दालक हैं तेरे नाना ।
अब तक यह जटिल तथ्य भ्रमवस
क्यों नहीं मूर्ख तूने जाना ॥

।। ७४ ।।

क्या मरुमरीचिका में मृगको
सपने में भी मिलता पानी ।
क्या वन–वन में भी भटक भटक
कस्तूरी पाता अज्ञानी ॥

।। ७५ ।।

क्या बालुसे भी कर प्रयास
पा सकता कोई भी शक्कर ।
क्या छुई मुई भी ले सकती
वासव दन्तावल से टक्कर ॥

।। ७६ ।।

तज अष्टावक्र दुराग्रह यह
बन सकलांगों का कृपापात्र ।
मधुकरी वृतिसे अब जीवन
यापन कर रह विकलांग मात्र ॥

।। ७७ ।।

तु अपशकुनों का अन्धकूप
अशुभों का घोर महालय है ।
उत्पातों का है धुमकेतु
जननीका भी जठरामय है ॥

।। ७८ ।।

अबतक तू करता रहा मूढ़
मेरी करुणा का दुरुपयोग ।
अब नहीं सहानुभूति तुझ पर
अधिकारों का होगा प्रयोग ॥

।। ७९ ।।

मेरे अधिकारों पर तूने
अब अविराम किया है अतिक्रमण ।
अबतक केशरी का भाग अधम
था खाता जम्बुक दुराक्रमण ॥

।। ८० ।।

अब नहीं चलेगी मनमानी
तज गोद पिताकी अष्टवक्र ।
मैं अष्टावक्र नहीं कहता तुझको
तू है विकलांग नक्र ॥

।। ८१ ।।

ये श्वेतकेतु के वचन विशिख
शिशुहृदयसरोज फाड़ डाले ।
चुभ गए शान्त मृदमानस में
अगणित अपमानों के भाले ॥

।। ८२ ।।

टूटी निद्रा पलमें शिशुकी
अब अष्टावक्र जगे सत्वर ।
जग उठा हृदय में कृतोन्मेष
सङ्कल्पकल्पशावक जित्वर ॥

।। ८३ ।।

मातामह को करके प्रणाम
मातुल को देकर आश्वासन ।
ज्यों चले यज्ञभोजन करने
यज्वा दे गौ को अग्रासन ॥

।। ८४ ।।

सब वृत सुजाता से सुनकर
शिशु अष्टावक्र न घबराया ।
उसके शुचिमन नन्दनवनमें
सङ्कल्पकल्पतरु उग आया ॥

।। ८५ ।।

शिशुके पौगण्ड वयस में भी
नवयौवन ने ली अंगडाई ।
उन्नत युगमसृण कपोलों पर
सङ्कल्प शुभ्र सुषमा छाई ॥

।। ८६ ।।

बोले हँस अष्टावक्र वचन
मातुल मैं सबकुछ समझ गया ।
प्रारंभ इसी क्षण करता हूँ
सङ्कल्प सुखद अध्याय नया ॥

।। ८७ ।।

है महामूर्खता मानव की
सङ्कट में शिर धुन धुन रोना ।
पुरुषत्व पुरुषका परुष पलों मे भी
प्रयत्न तत्पर होना ॥

।। ८८ ।।

भवदीय भगिनी के कहने से
मम तात विदेह निकेत गए ।
होकर बन्दीसे भग्नोत्तर
सङ्कट के सहे कुशल्प नए ॥

।। ८९ ।।

निन्दित बन्दीने पितृवर को
निर्गाध नीरमें मग्न किया ।
दी कीनाशीय यातना भी
वाचिक वैभव से भग्न किया ॥

।। ९० ।।

जीवित हैं या ऋषि नहीं अभी
यह कुछ भी मुझको ज्ञात नहीं ।
पर यह मैं अभी जान पाया
मेरे ढिग संप्रति तात नहीं ॥

।। ९१ ।।

हे मातुल कहकर परुषवचन
तुमने मेरा अपमान किया ।
यह अर्धसत्य वस्तुतः सुप्तको
इस मिस तुमने जगा दिया ॥

।। ९२ ।।

मैं जगा मित्र होकर सतर्क
टूटी प्रगाढ़ मेरी निद्रा ।
सङ्कल्प सलिल से मुख धोया
भागी मेरे तन से तन्द्रा ॥

।। ६३ ।।

मैं कभी न भिक्षा मागूँगा
होकर अपंग परमेश्वर से ।
कर्तव्य की शिक्षा मागूँगा
होकर विकलांग परेश्वर से ॥

।। ६४ ।।

यह जीवन एक रणस्थल है
मैं एक उसीका योद्धा हूँ ।
अन्यायों का अवरोद्धा हूँ
औ कुपरम्परा विरोद्धा हूँ ॥

।। ६५ ।।

अधिकारों के हित नहीं करूँगा
यथा गृदध्र छिना झपटी ।
कर्तव्य करूँगा निष्प्रमाद
होऊँगा कभी नहीं कपटी ॥

।। ६६ ।।

अपराधी बनकर क्षमा हेतु
ईश्वर ढिग कभी न जाऊँगा ।
परमेश्वर चरणो में स्वकर्म
निष्ठाके सुमन चढाऊँगा ॥

।। ९७ ।।

मैं कभी न कोसूँगा प्रभु को
अपनी दुर्भाग्य दुर्दशा पर ।
मैं तो परितोषूंगा विभुको
निजकृत सत्कर्म मधु निशापर ।।

।। ९८ ।।

मैं कभी न रोऊँगा मातुल
अपनी विकलांग अवस्था पर ।
गौरव से होऊँगा सुसफल
प्रभु को कर मुदित व्यस्था पर ।।

।। ९९ ।।

जो औरों को अभिशाप बना
वरदान वही मेरा होगा ।
कुछ भी न असंभव इस जगमें
आह्वान यही मेरा होगा ।।

।। १०० ।।

दशवर्ष व्यर्थ मेरे बीते
इस महामोह के निद्रामें ।
सङ्कल्प कलश भी थे रीते
अबतक इस लिए कुतन्द्रामें ।।

।। १०१ ।।

अब अष्टावक्र जगा मातुल
अब कभी नहीं फिर सोएगा ।
जगकी इस भूल भूलैया में
सङ्कल्प ललाम न खोएगा ॥

।। १०२ ।।

क्या है भविष्य क्या है हविष्य
यह तो अब समय बताएगा ।
मैं वहीं सखे अब जाऊँगा
सङ्कल्प जहां ले जाएगा ॥

।। १०३ ।।

जब तक पिताको न जीवित कर
मैं आश्रम में ले आऊँगा ।
कहता हूँ सत्य शपथ करके
तब तक न लौटकर आऊँगा ॥

।। १०४ ।।

यह युद्ध लड़ूंगा एकाकी
विश्रुत विजयश्री पालूँगा ।
हूँ अष्टावक्र सङ्कल्पों से
मैं अष्टावक्र कहालूँगा ॥

।। १०५ ।।

संसार तथ्य यह जानेगा
विकलांग क्या नहीं कर सकता ।
यह अष्टावक्र मेदिनी में
सुनिधान क्या नहीं भर सकता ॥

।। १०६ ।।

सङ्कल्पशक्ति दृढ़तम निश्चय
सात्विक श्रद्धा का यदि सम्बल ।
मिल साथ रहें इस जगमग में
तो हो सकता विकलांग सफल ॥

।। १०७ ।।

पर इस सङ्कल्पमहापथ में
मिथ्याहङ्कार परम रोधक ।
होता है अध्वनीन शात्रव
उसका हरिध्यान परम शोधक ॥

।। १०८ ।। (गीत)

सत्य है सङ्कल्प मेरा नित्य है सङ्कल्प मेरा,
इस विषमता के विपिन में मलिन ममता के गहन में ।
हर निराशा तिमिर हरि ज्यों स्तुत्य है सङ्कल्प मेरा । सत्य०
मैं निडर आगे बढ़ूँगा पङ्कसे सत्वर कढ़ूँगा ।
कर्म कांचन घट गढ़ूँगा कृत्य है सङ्कल्प मेरा । सत्य०

सफलता कलिका खिलेगी निशामें भी दिशा मिलेगी ।
दूर होगा दुरित परमौचित्य है सङ्कल्प मेरा ॥ सत्य०

हर्षके दीपक जलेंगे धाम आयामी मिलेंगे ।
पथिक अष्टावक्र निर्भय नृत्य है सङ्कल्प मेरा ॥ सत्य०

नमो राघवाय

॥ श्रीराघवः शन्तनोतु ॥

।। नमो राघवाय ।।

अष्टावक्र महाकाव्य–षष्ठ सर्ग

“साधना”

।। १ ।।

जहाँ लक्ष्ण निर्धारण सुनिश्चय विहित सुमित प्रयोग है
जहाँ सफलता हित निष्प्रमाद सुकर्म कौशल योग है ।
जहाँ लक्ष्य साधन से पृथक् कुछ भी नहीं है साधना
सङ्कल्प की शुभशक्ति ही जाती कही वह साधना ॥

।। २ ।।

जहाँ पार्थसी निज लक्ष्य भेदन पर सुकेन्द्रित दृष्टि है
जहाँ रामसी दृढ़ निश्चया सात्विक सृष्टि है ।
जहाँ लक्ष्य की संसिद्धि ही दिनरात की आराधना
वह सफलता की कुंजिका कहते उसीको साधना ॥

।। ३ ।।

जहाँ बृद्धि व्यवसायात्मिका कर्तव्य निष्ठा है जहाँ
निष्काम मन से कर्म की सात्विक प्रतिष्ठा है जहाँ ।
जहाँ लक्षसे अतिरिक्त कुछ भी शेष मनमें साध ना
पुरुषार्थ की पुंजी कही जाती वही है साधना ॥

।। ४ ।।

जहाँ व्याकरण की साधुता और न्याय की एकाग्रता
मीमांसकीय विचारणा शिक्षा की जहाँ समग्रता ।
जहाँ ब्रह्मविद्यासी सदा निरवद्य है आराधना
सङ्कल्प की जो कल्पना कहते उसीको साधना ॥

।। ५ ।।

जहाँ सांख्यसी सुविवेचना वैशेषिकीय निधारणा
जहाँ पूर्वमीमांसा सरीखी वाक्यकी निर्धारणा ।
जहाँ पक्ष निष्ठा न्यायसी वेदान्तसी आराधना
जहाँ योगसी मानस विशुद्धि वही सही है साधना ॥

।। ६ ।।

जिसमें न भूख न प्यास निद्रा और तन्द्रा भी नहीं
जिसमें न उन्मीलन प्रमीलन वृत्तिसान्द्रा भी नहीं ।
जिसमें सदैव प्रवृति ही कुनिवृति का उत्सर्ग है
सङ्कल्पसिद्धि जनक वही कवि साधना का सर्ग है ॥

।। ७ ।।

जिसमें परिस्थितियाँ विषम करती सरस श्रृंगार हैं
प्रतिकूलतायें भी जहाँ देती अनघ उपहार हैं ।
जिसमें न हाहाकार है सर्वत्र स्वाहाकार है
वह साधना का सर्ग शुभ कृतिका अनघ उपकार हैं ॥

।। ८ ।।

आरूढ़ हो जिसपर पहूँच गत्तव्य तक जाता कृती
संरूढ़ हो जिसपर सफलता प्राप्त कर पाता व्रती ।
उद्देश्य की संपूर्ति ही जिस जटिल व्रतकी पारणा
वह विश्वविश्रुत साधना की विधि विदित अवधारणा ॥

।। ९ ।।

सर्वत्र ऐक्य निर्धारणा जिसमें सदा अद्वैतसी
निजलक्ष परवशता सदा जिसमें विशिष्टाद्वैतसी ।
जिसमें निरन्तर योगसी सभी वृत्तियों की लीनता
वह साधना होती जहाँ सङ्कल्प सध्रीचीनता ॥

।। १० ।।

जिसमें सदैव विराजती साहित्य की सी सर्जना
संन्यास सी जिसमें विलसती दिवानिश उत्सर्जना ।
जिसमें धनंजय सी सदा निजलक्ष्य केन्द्रित दृष्टि है
वह कुशल कवि कौशल सदृश शुचि साधना की सृष्टि है॥

।। ११ ।।

जिसमें शरीर विसर्ग यावत् कार्यसिद्धि सुलक्ष्य है
जिसमें सफलता मन्त्र ही सङ्कल्पबल से रक्ष है ।
जिससे मनुजको प्राप्त होता मानवीय विधान है
वह ब्रह्मपद प्रापक अखण्डित साधना सोपान है ॥

।। १२ ।।

अब श्वेतकेतु प्रतारणा ही बनगई आराधना
दिनरात अष्टावक्र की सङ्कल्प सहचर साधना ।
अब स्वप्न में भी श्रवणमें यह वाक्य उनके गूँजता
बनकर विपंची वंशी का रव काकलीसा कूँजता ॥

।। १३ ।।

अब सोचते रहते हृदयमें अनघ अष्टावक्र यों
प्रतिरोध मे भी गमन हित चंचलित कालिक चक्र ज्यों ।
दिनरात चिन्ता एक ही थी धधकती जैसी चिता
किसभाँति दारुणबन्ध से उन्मुक्त हों मेरे पिता ॥

।। १४ ।।

यद्यपि दिया है शाप मुझको क्रुद्ध हो पितृपादने
फिर भी न किया व्यथित मुझे विकलांग संग विषादने ।
क्या यह अनुग्रह नहीं उनका मुझ अनय गतबोध पर
जो व्यर्थ ही अड़ता रहा अपने चपल प्रतिरोध पर ॥

।। १५ ।।

वस्तुतः मुझको था मिला मेरे किए का दण्ड ही
उसमें सहायक बनगया मम पितृचरण का चण्ड ही ।
अधिकार के पहले किया मैंने प्रखर प्रतिरोध था
इस हेतु तात कहोलके उपजा हृदयमें क्रोध था ॥

।। १६ ।।

यद्यपि अनादि निसर्ग से श्रुतियाँ मुझे सब सिद्ध थीं
पर संस्क्रियाके पूर्व तो उपदेश में प्रतिबद्ध थीं ।
प्रतिषेधका अज्ञानवश मैंने किया समतिक्रमण
ॠषिशापका मुझपर हुआ इस पाप से ही संक्रमण ॥

।। १७ ।।

अधिकार विन उपदेश करना घोरतम दुष्कर्म है
कर्तव्यका निर्देश कृत विन अनय और अधर्म है ।
अभिमान वश वह सब किया मैंने अनय अपचार था
इससे किया मुझपर पिताने शाप लगुड़ प्रहार था ॥

।। १८ ।।

उद्दण्ड पशुका दण्ड ही शिक्षक शुभद सबसे बड़ा
पक्का किया जाता निरन्तर पीटकर कच्चा घड़ा ।
मैं अर्भ दंभी कुंभ था कच्चा कहोल कुम्हार थे
दे शापकी ही चोट मेरा किये सूक्ष्म सुधार थे ॥

।। १९ ।।

हाँ दोष उतना था नहीं जितना मुझे मिला दण्ड था
वश भूल इतनी ही पिताकी क्यों कि चण्ड प्रचण्ड था ।
यह क्रोध ही वस्तुतः मानवका भयंकर शत्रु है
यह गुण सुकृतमय दारूका अघका सुमांसल जत्रु है ॥

।। २० ।।

जब पितृचरण के उत्तरों के अधिक प्रत्युत्तर दिए
मैंने तभी उपजा भयङ्कर क्रोध अतिशील हिए ।
जब किया जाता अधिक संधषेण सहज गुण तज तरल
तब प्रगट चन्दन से भी होता प्रवलतम दारूण अनल ॥

।। २१ ।।

मेरे पिताने करदिया कर्तव्य सात्विक जनकका
मेरा परीक्षण होगा अब जैसे दहन में कनकका ।
किस भाँति कर्म कठोर यह हा हन्त कर पाऊँगा मैं
गतचरण होकर रणनदीको कैसे तर पाऊँगा मैं ॥

।। २२ ।।

होंगे मनोरथ पूर्ण अष्टावक्र अब कर साधना
क्यों हाथ पर धर हाथ बैठा छोड़ पित्राराधना ।
सङ्कल्पके सम्मुख समस्या ठहर सकती है नहीं
सिन्धून्मुखी जाह्नवी ढिग शैवली टिक सकती कहीं ॥

।। २३ ।।

जिस भाँति बन्दी से छुटेंगे दुष्ट की मेरे पिता
अब वही है करणीय मुझको व्यर्थ है चिन्ता चिता ।
अभ्यास शास्त्रों का करूँ पण्डित प्रकाण्ड प्रबल बनूँ
जिस विधिसे हो बन्दी पराजित तद् विधीय सबल बनूँ ॥

।। २४ ।।

श्रुतिविहित कर्मो मे ही नरका सर्वधा अधिकार है
फलमें कभी भी नहीं इतरथा मनुज न्यक्कार है ।
सम हो के सिद्धि असिद्धियों में कर्म करना धर्म है
समभाव कौशल कर्मका यह योग है श्रुति मर्म है ॥

।। २५ ।।

अब मनमें अष्टावक्र कर सङ्कल्प से निश्चय यही
निजहृदय में धर धीर धर दृढ़कल्प से निर्णय यही ।
तब पिता छूटें बन्धसे अन्यथा छूटे देह यह
तव पिता आएँ गेहमें अन्यथा टूटे गेह यह ॥

।। २६ ।।

अविलम्ब शास्त्राभ्यास कर दिनरात लेकर एक व्रत
कैसे पिताश्री मुक्त हों राकाशशि ज्यों धनविगत ।
ऊर्जस्विनी मंजुल मनीषा कर सतर्क ऋतम्भरा
जो करे संग्रह शास्त्रका ज्यों बीजराज बसुन्धरा ॥

।। २७ ।।

उपसदन कर गुरुका पुनः ले हाथमें समिधा कुशा
तजदे निराशा की निशा भजले सदाशा की उषा ।
अविनय अनय वाचाटता से विप्रवर को मत खिझा
सेवा सुश्रूषा विनय से ऋषिबाल ऋषिवर को रिझा ॥

।। २८ ।।

ऋग्वेद वेदयजुर्गणों का सामवेद विनीत हो
पढ़कर सुवेद अथर्वका सरहस्य परम पुनीत हो ।
सरहस्य सहितोपाङ्ग उपवेदोंका कर स्वाध्याय तू
कर मूक बन्दीको पिताको मुक्त कर दे न्याय तू ॥

।। २९ ।।

गौतमी न्याय पुराण विद्या और मीमांसा युगल
पढ़ धर्मशास्त्र विधर्मियों का सोखले दारुण गरल ।
आगम तथा प्रवचन सुविधिसे और श्रुति व्यवहार से
स्वाध्याय से कर पक्व विद्या निज विमल आचार से ॥

।। ३० ।।

संपूर्ण विद्या व्रतस्नात नदीष्ण हो शास्त्रार्थ में
पदवाक्य प्रबल प्रमाण पारावार शुचि पुरुषार्थ में ।
होकर कुशल निजस्वार्थ में परमार्थ में प्रतिभा धनी
करदे पराजित बन्दि बालिशवर्ग की अहमिति अनी ॥

।। ३१ ।।

यह सोच अष्टावक्र अब व्युत्पन्न विद्यार्थी बने
कर गुरूपसदन पुनीत मनसे शिष्ट शिक्षार्थी बने ।
गायत्र्य व्रत कर वर्णिवर्य वरेण्य विद्याध्याय में
तन्मय हुए शुचि भाव से वर्धिष्णु श्रुति स्वाध्याय में ॥

।। ३२ ।।

उपसदन उद्दालकका कर प्रांजलि कहे प्रांजल गिरा
तत्काल अष्टावक्र का मानस करुण रस से भरा ।
तत्काल छाया युगकमल नयनों में करुणा नीर था
गद्गद् वचन था पुलक तन था शान्त स्वान्त अधीर था ॥

।। ३३ ।।

हे देव मेरी दुर्दशा हैं आप विधिवत जानते
दयनीयता मेरी दयानिधि आप हैं पहचानते ।
अघटित घटा मातुल वचन से आपश्री के सामने
झकझोर डाला श्वेतकेतु दुरूक्ति कृत अपमानने ॥

।। ३४ ।।

पर मैं नहीं विचलित महीसुरवर्य इस अपमानसे
सङ्कल्प ही मेरा जगाया द्विजने इस अवमान से ।
अब तो पिताकी मुक्तिहित करता हूँ अद्भुत साधना
सङ्कल्प कर प्रारंभ करता शास्त्रकी आराधना ॥

।। ३५ ।।

होकर नदीष्ण सुधीष्ण मैं शुचिशास्त्र पारावारमें
बन्दी छुड़ाऊँगा पिताकी जो हैं काररागार में ।
पुत् नाम नरकसे त्राण कर पितुपुत्र कहलाऊँगा मैं
सङ्कल्प सात्विक साधना का सूत्र बन जाऊँगा मैं ॥

।। ३६ ।।

माता सुजाता मङ्गलाशासन करें मेरे लिए
औ आपभी निष्पाप अनुशासन करें मेरे लिए ।
जब तक पिताकी छोड़ बन्दी नहीं ले आऊँगा मैं
तब तक सुजाता को मलीमस मुख न दिखलाऊँगा मैं ॥

।। ३७ ।।

अब छोड़ ममता पौत्रकी ऋषिराज सर्ग नया रचें
करवा के मुझसे साधना ऋषिवर विसर्ग नया रचें ।
अब मैं नहीं दौहित्र ऋषिका छात्र अष्टावक्र हूँ
सामान्य वटु हूँ आपका सङ्कलित सङ्कट नक्र हूँ ॥

।। ३८ ।।

अबसे न उद्दालक कुपा कर पूज्य मुझको मानिए
है आपका ही छात्र अष्टावक्र मनमें जानिए ।
हो निष्प्रमत्त सभी नियम पालन करुँगा देव मैं
अब अधिक अनुशासित रहूँगा पूर्वसे स्वयमेव मैं ॥

।। ३९ ।।

पर आपभी संकोच तज मुझको करें अनुशिष्ट ही
जिससे बनुँ मैं शिष्ट शिशु परिशिष्ट छात्र विशिष्ट ही ।
अवशिष्ट किमपि न रह सके ऐसा करूँ मैं शास्त्रश्रम
करके पराक्रम वेदमें मैं हरूँ बन्दी बालभ्रम ॥

।। ४० ।।

द्विजवर्य उद्दालक मुझे सङ्कोच तजि शिक्षित करें
विक्षित करें आन्वीक्षिकी में यज्ञमें दीक्षित करें ।
होवें न मुझपर संशयालु मैं वचन देता आपको
कर शास्त्रमें श्रम समुत्कृष्ट करूँगा प्रकट प्रताप को ॥

।। ४१ ।।

मुझे मानिए दौहित्र मत गुरूवर कृपा अब कीजिए
मतिवक्र अष्टावक्र को शिक्षा यथोचित दीजिए ।
अब लीजिए अपनी शरणमें मोहतम हर लीजिए
गुरुदेव करुणा कीजिए शिशु करुण रसमें भीजिए ॥

।। ४२ ।।

यों कहके अष्टावक्र गुरुकुल में मुदित रहने लगे
उद्दालकीय वरेण्य वत्सल सिन्धु में वहने लगे ।
सहने लगे सब छात्र सङ्कट ज्ञान भी लहने लगे
कर्तव्य निर्वहने लगे सब शोक निर्दहने लगे ॥

।। ४३ ।।

हो एकश्रुत सुन शकृत् शास्त्रसमूहको धारण किया
प्रतिभा न रहती व्याप्य यह राद्धान्त निर्धारण किया ।
माने न साधारण उसे उद्युक्त उद्दालक कभी
गुत्थियाँ सुलझाते रहे शुचि सुमति से शिशु की सभी ॥

।। ४४ ।।

अत्यल्प दिवसों में वटुक शास्त्राब्धि पारंगत हुआ
ऋग्वेद सुयजुर्वेद सामाथर्ववेद निरत हुआ ।
विभ्रम न अष्टावक्र को होता कभी भी शास्त्र में
होगए अष्टावक्र तद्वत् दक्षरण दिव्यास्त्र में ॥

।। ४५ ।।

काहोलि कौतूहल कला प्रतिभा प्रगल्भ प्रकाश ने
सबको हतप्रभ कर दिया अनायास सुमति विलाश ने ।
व्युत्पन्न बालक ने सभीके दाँत खट्टे कर दिए
मातामही मातासुमन गृहमें जले मङ्गल दिये ॥

।। ४६ ।।

अवलोक अष्टावक्र की व्युत्पन्न मेधा नम्रता
शास्त्रीय पटुता शीलता सौजन्य कल्पित कम्रता ।
विद्याविनय संपन्नता व्युत्पन्नता गंभीरता
होगए उद्दालक मुदित शुचि शिष्यकी लख धीरता ॥

।। ४७ ।।

सुमुहूर्त ऋषिवर शोधकर करने समावर्तन लगे
साद्गुण्य अष्टावक्र के करने नमित नर्तन लगे ।
वनमें महोत्सव होरहा बज उठीं व्योमबधाईयाँ
कटने लगीं बुधसङ्कटों की कलुषकश्मल काईयाँ ॥

।। ४८ ।।

एकान्तमें आहूत कर वटुवर्य अष्टावक्र को
कुछ करुण उद्दालक बने अवलोक सङ्कटचक्रको ।
आसीन करके अङ्कमें मुख चूमकर दौहित्र का
बहने लगा मन वनधिमें करुणाके धैर्यवहित्र का ॥

।। ४९ ।।

हे वत्स सब विद्याव्रतों में स्नात अब तुम होगए
सषडङ्गवेदो में निपुण निष्णात तुम अब होगए ।
अतएव मैं सुखसे तुम्हारा समावर्तन कर रहा
पर दुसह तव विश्लेष दुःखसे मनस मेरा भर रहा ।

।। ५० ।।

तुम सत्य ही बोलो सदा कर सर्वदा धर्माचरण
स्वाध्याय प्रवचन से कभी होना विमुख मत भयहरण ।
मत आर्त होना विपदमें जिज्ञासु रहना सर्वदा
वरलेगी तुमको ब्रह्मज्ञानी शीघ्र चिन्मय सम्पदा ॥

।। ५१ ।।

गुरुमें न बालक भूलकर भी जीवभाव निहारना
गुरुवर चरण में धाम धन तन तनय वैभव वारना ।
सच्चरित जो मेरे दिखें लाना उन्हें व्यावहार में
मेरे कुचरितों को भुलाना सुखी रह संसार में ॥

।। ५२ ।।

यह विश्ववारा प्रथम है श्रुतिविहित भारत संस्कृति
इसकी कृपासे सतत होगा पूतमन तेरा कृती ।
यह चिर पुरातन नित्य नूतन शुचि सनातन धर्म है
इससे विरूद्धाचरण ही नितराम् निषिद्ध विधर्म है ॥

।। ५३ ।।

ईश्वर स्वयं अवतार लेते भव्य भारत में सदा
इसधर्म की कर स्थापना कृतकृत्य होते सर्वदा ।
यह मनुजता का प्राण है वैदिक सनातन धर्म ही
यह दनुजता से त्राण है जो श्रुतिविरूद्ध विधर्म ही ॥

।। ५४ ।।

अतएव धर्मविरूद्ध कोई भी न करना आचरण
विकलांग कुलका बन पुरोधा तज सदैव दुराचरण ।
संसार अष्टावक्र गाएगा विमल तेरा सुयश
विकलांगजन परिवार ध्याएगा अमल तेरा तपस ॥

।। ५५ ।।

माता पिता आचार्य औ अतिथि को समझो देव तुम
इनकी कृपासे शीघ्र ही हो जाओगे भूदेव तुम ।
यह नाट्यशाला है जगत् तुम एक अभिनय कर रहे
जैसा कराया जा रहा फिर व्यर्थ मनमें डर रहे ॥

।। ५६ ।।

हे वत्स अष्टावक्र तुम पृथिवी नहीं तुम जल नहीं
अच्छेद्य तुम निर्भेद्य हो तुम प्रलयकालानल नहीं ।
तुम मातरिश्वा भी नहीं आकाश भी तुम हो नहीं
तुम सर्वधा परिपूर्ण हो अवकाश भी तुम हो नहीं ॥

।। ५७ ।।

तुम मन नहीं तुम मति नहीं तुम अहङ्कार नहीं वटो
तुम चित भी बालक नहीं तुम चेतना के पूर हो ।
तुम अष्टप्रकृती से परे जीवात्मतत्व अवक्र हो
हे वत्स इस कारण जगत में प्रथित अष्टावक्र हो ॥

।। ५८ ।।

कौमार यौवन औ जरा तीनों अवस्था देहकी
परिवर्त्य और निवर्त्य हैं चपला यथा पय गेहकी ।
जन्मना स्थित रहना विवर्धनशीलता औ ह्रास भी
ऊर्मियाँ षट् इस देहकी परिणाम और विनाश भी ॥

।। ५९ ।।

आत्मा न लेता जन्म द्विज प्रत्यक कभी मरता नहीं
यह जन्ममरणातीत चिन्मय शोक से भरता नहीं ।
जब जीव कर लेता स्वयंको पंचभूतों से पृथक्
कृतकृत्य हो जाता तभी आनन्दमयपीयूष छक् ॥

।। ६० ।।

तुम शुद्ध आत्मा मुक्त चिन्मयरूप को पहिचानलो
श्रीराम के ही दास शाष्वत यह स्वयं ही जानलो ।
तुम धर्म और अधर्म से भी सर्वथैव अतीत हो
तुम कार्यकारण से परे परमात्मदास पुनीत हो ॥

।। ६१ ।।

अत एव अष्टावक्र अब उन्मुक्त हो विचरण करो
जाओ पराजित कर बुधों को जनकका सङ्कट हरो ।
हे वत्स यह भूलो नहीं स्वामी नहीं तुम दास हो
तुम ईशके भी नियम्य हो प्रज्ञा विवेक निवास हो ॥

।। ६२ ।।

शीतोष्ण सुखदु:खादि द्वन्द तुम्हें सताएंगे नहीं
संसारके सारे प्रलोभन तुम्हें लुभाएंगे नहीं ।
तुमको न ठग पाएगी अष्टावक्र यह माया नटी
अब फाड़ पाएगा न कोई भक्ति की पावन पटी ॥

।। ६३ ।।

चाहो तो उपकुर्वाण होकर विश्वका मङ्गल करो
या रहके नैष्ठिक ब्रह्मचारी जगत में निर्भय चरो ।
पर एक दृढ़ निश्चय करो करणीय क्या सबसे प्रथम
क्या प्राक् समाचरणीय है स्मरणीय क्या सबसे प्रथम ॥

।। ६४ ।।

बन्दी बने तेरे पिता आकण्ठ नीर निमग्न हैं
गत्वर जरद्गव ज्यों विकल सन्देह कर्दम मग्न हैं ।
अत एव सर्वप्रथम पित्रुद्धार ही करणीय है
शास्त्रीय पारम्परी रक्षण सर्वदा चरणीय है ॥

।। ६५ ।।

यह एक ही है लक्ष्य अब किस भाँति इसकी पूर्ति हो
सोचो तुम्हीं किस भाँति से शात्रव हृदय में जूर्ति हो ।
कैसे पिताश्री मुक्त हों दुष्पार कारागार से
कैसे वे बाहर आ सकें इस कष्ट पारावार से ॥

।। ६६ ।।

कैसे पुनः होवे प्रतिष्ठित स्वाभिमान द्विजेन्द्र का
कैसे पुनः प्रत्यागमित हो मृगसे मान मृगेन्द्र का ।
कैसे पुनः हो मानवीय सुमूल्यकी संस्थापना
कैसे पुनः हो दानवीय विमूल्यकी विस्थापना ॥

।। ६७ ।।

यह सब तुम्हे आलोच्य है अब बाल नहीं किशोर हो
हो कमल कोमल मित्रहित अरिहेतु कुलिश कठोर हो ।
हित अहित के अन्तर को पामर पशु भी है पहचानता
पक्षी भी निज पर पक्षको सम्यया है जानता ॥

।। ६८ ।।

जाओ जनक संसद विपिनमें सिंह गुरु गर्जन करो
भर्जन करो छल चण चणकका विमल यश अर्जन करो ।
श्रीराम तुमको सफलता दें इस महासंग्राम में
हों विफल सभी सपत्न तेरे विबुध गर्वित ग्राम में ॥

।। ६९ ।।

चूमें सभी अनुकूलताये आ भवत् सरसिजचरण
प्रतिकूलतायें सब तुम्हारी बनें प्राक्तन संम्मरण ।
पीछे न मुड़ना वत्स अब आगे अभय धरना चरण
होगा अमर इतिहासमें मिथिलासदन गत शास्त्ररण ॥

।। ७० ।।

जय राम जय श्रीराम कह विद्वत् प्रवर आगे बढो
प्रतिभा प्रदर्शित कर कुबन्दी वैरिछाती पर चढो ।
सघंर्ष होगा ऐतिहासिक शत्रुका अपकर्ष भी
उत्कर्ष होगा सुत तुम्हारा बुधगणें में हर्ष भी ॥

।। ७१ ।।

जाओं बनो विजयी विबुध विनयी विवेक विलास हो
वैदुष्य विशद विकास हो द्विजघश्मरों का नास हो ।
मत् करो तनिक विलम्ब अब निश्चय सुदृढ़ संकल्प लो
प्रतिभेन्दु ज्योत्स्नालोक में निर्णय प्रगल्भ प्रकल्प लो ॥

।। ७२ ।।

निन्दक भले मातुल तुम्हारा श्वेतकेतु सुबुद्ध है
यह नैकटिक होगा उचित अन्तः करण से शुद्ध है ।
निन्दक सदैव समीप ही बुधजन को रखना चाहिए
कटु भी महौषधको सदा स्वास्थ्यार्थ चखना चाहिए ॥

।। ७३ ।।

पुस्तक सहित दो ब्राह्मणोंका शुभावह दर्शन सदा
यात्रार्थ दोका सहगमन है शकुन मङ्गल सर्वदा ।
अतएव मातुल श्वेतकेतु रहे तुम्हारे साथ में
होगा कुशल मङ्गल विजय निष्ठा रखो रघुनाथ में ॥

।। ७४ ।।

इस भाँति उद्दालक वचन सुन उमगकर उत्साहमें
उद्छीप्त अष्टावक्र बोले क्लिन्नभाव प्रवाह में ।
उसकाल भूसुर पुत्रका मुख अरुण शोभित हो रहा
जिस पर मनोभव विहित विम्बाफल विलोभित हो रहा ॥

।। ७५ ।।

हे देव परिदेवना छोड़े आप अब आज्ञा करें
उत्साह देखें शावकों का नृहरि समनुज्ञा करें ।
नरपति सभामें भास्वती होगी हमारी भारती
हों चकित मिथिलापति उतारेंगे उमगकर आरती ॥

।। ७६ ।।

मैं ले रहा सङ्कल्प दृढ़ उसमें न कहीं विकल्प है
यह तल्प है संभावना का साधनाका कल्प है ।
आज ही होगी पूण्र अष्टावक्र की आराधना
पूरी करेगी आज ही सब साध मेरी साधना ॥

।। ७७ ।।

शास्त्रार्थ में कर मूक मिथिलाधिपति बन्दिकलंक को
मार्जित करूँगा सुचिर लिम्पित कठिन कैतव पङ्क को ।
जब तक न बन्दीसे पिताको मुक्त कर लाऊँगा मैं
तबतक न पातकपङ्कपङ्किल वदन दिखलाऊँगा मैं ॥

।। ७८ ।।

आवेश मत समझें इसे यह सत्य अष्टावक्र का
सङ्कल्प ब्राह्मणपुत्रका भूतार्थ भौतिक चक्रका ।
कर स्वस्तिवाचन हे गुरो मेरा समावर्तन करें
अपने तपोबलसे प्रभो कुछ भाव परिवर्तन करें ॥

।। ७९ ।।

इस समय कुछ देता नहीं सम्भृति रहेगी दक्षिणा
दक्षेश शशिलेखा सदृश सत्कृति रहेगी दक्षिणा ।
मिथिलेश कारागारसे लाकर जवाँई आपका
मैं दूँ चुका गुरुदक्षिणा मार्जन यही परितापका ॥

।। ८० ।।

आशीष उद्दालक मुदित उत्सव उदित उत्साह दें
उत्सुक समुत्कण्ठित उषित उरमें उमंग प्रवाह दें ।
कर आपको वन्दन नमन मैं जा रहा मिथिला पुरी
जहां आतुरी दिखती तुरीय तुरीय चर्चित चातुरी ॥

।। ८१ ।।

प्रमाश्रु पूरित लोचनों से चूम अष्टावक्र को
किए विदा उद्दालक नमन कर काल चंचलचक्रको ।
यद्यपि व्यथित मन कर रहा सच्छात्रका सुवियोग था
उस ओर नूतन सर्ग रचना कर रहा विधियोग था ॥

।। ८२ ।।

कर नमन ऋषिको चल पड़े काहोलि कौतूहल भरे
मंजूल मनोरथ कल्पपादप होगए तत्क्षण हरे ।
तत्काल पुष्पित होगई संभावना सुरवल्लिका
करने लगी सुरभित विपिनको कल्पना नवमल्लिका ॥

।। ८३ ।।

ले साथ मातुलको सुजाता निकट आए मुनितनय
जननीचरण वन्दन किया बोले वचन विलसित विनय ।
हे अम्ब अतिअनुरागसे अब अमल आशिष दीजिए
संभव सुभव संभावना हो यही करुणा कीजिए ॥

।। ८४ ।।

आदेश गुरुका शीष पर धर जारहा मिथिलापुरी
पितुको छुडाऊँगा निगड़से विहतकर बुध चातुरी ।
विकलांग लख मुझको जननि मनमें न शङ्का कीजिए
मनसे नही विकलांग मैं यह धारणा धर लीजिए ॥

।। ८५ ।।

पुरुषार्थ गौरव के समक्ष न देह लघुता गण्य है
करता तिमिर पटलीदलित लघु रश्मिकेतु वरेण्य है ।
अत्यन्त अंकुश मत्त गजको भी स्ववश करता सदा
लघ्वर्ण मंत्र नियम्य होते द्रुहिण हरिहर सर्वदा ॥

।। ८६ ।।

सुन वचन अष्टावक्रके भावुक सुजाता होगई
उपरत प्राय स्वकान्त की स्मृतिमें निमिष भर खोगई ।
मङ्गल प्रयोजनवती दृगका नीर निर्भर रोककर
गद्गद् गिरा बोली सती सुतवदनविधु अवलोककर ॥

।। ८७ ।।

हे जनकवत्सल वत्स मैंने ही तुम्हारे तात को
भेजा हठात् मिथिलापुरी निर्लोभ सद्गुण व्रात को ।
दुर्दैव किन्तु दुरन्त है विधिकी विषम भवितव्यता
जिसने समाहृत कर दिया कुल कुलिशमें द्रवितव्यता ॥

।। ८८ ।।

धनहेतु जाकर तात तेरे आजतक आए नहीं
अभिशप्त अष्टावक्रको अवलोक दुलराये नहीं ।
मैं भी तुम्हारे सामने खुलकर कभी रोई नहीं
करती प्रतीक्षा समयकी धृतिभी कभी खोई नहीं ॥

।। ८९ ।।

मधुमास होगा ग्रीष्म क्या मुझको कभी आभास था
काकली होगी करटरव यह क्या मुझे प्रतिभास था ।
सोचा नहीं जो स्वप्नमें भी वह हुआ अघटित तनय
मैं देखती ही रही अद्य अन्याय औ अविनय अनय ।।

।। ९० ।।

तुमभी इसी दारुण समयमें आगए विकलांग हो
पीती रही आसू जननी हा हन्त मैं सकलांग हो ।
मेरे पिताश्री पूज्य उद्दालक दुरन्त उदन्त को
एकान्त में मुझसे कहे सब करुणागाथा श्रान्त हो ।।

।। ९१ ।।

मेरे पिताने सब निभाई रीति तेरे तात की
कर श्राद्ध नान्दिमुख क्रिया सम्पन्न की सब जात की ।
हम पिता बेटीने छिपाया आजतक तुमसे तनय
जिससे न हो तेरा दुखित मन रहे अक्षत शिशु अभय ।।

।। ९२ ।।

पर चपल भ्राताने तुम्हें सबकुछ रहस्य बता दिया
अज्ञानवश तुमको मुखरने कालमुख दिखला दिया ।
यद्यपि अभी तुम बाल हो सतुचित अनेहा है नहीं
फिर भी निठूर निर्दय विधाता की समीहा है यही ।।

।। ६३ ।।

तेरे पिता बहुशः मुझे आ स्वप्नमें कहते यही
सत्वर छुड़ालो हे शुभे जाती नहीं संसृति सही ।
हैं चरण ऊपर शीष नीचे श्वास घुंटती कान्तकी
नरकीय सङ्कट सह रहे अब आश टुटती शान्तकी ॥

।। ६४ ।।

हैं पड़े औंधे मुख विकल मन तात तेरे पङ्कमें
उपरक्त विधुज्यों सह रहा सङ्कट कड़ा कुकलङ्कमें ।
अतएव अष्टावक्र जाओ प्रकट कर आराधना
पितुको कुबन्दी से छुड़ाओ सफल करलो साधना ॥

।। ६५ ।।

माता सती देती रहूँगी आशिषा रहकर यहीं
पूरी करोगे साधना तुम पुत्र रहकर भी कहीं ।
होगा न तेरा बाल बाँका शुचिजननी आशीष से
तेरे लिए करती रहूँगी प्रार्थना जगदीश से ॥

।। ६६ ।।

जाओ लगाओ देर मत होवे सफल आराधना
हों मार्ग मङ्गलमय तुम्हारे सिद्ध होवें साधना ।
पर लक्ष पर केन्द्रित रहो अप्रमत्तमन से पुत्र हे
हो वर्त्म वक्र अवक्र सब विधुवक्त्र अष्टावक्र हे ॥

।। ९७ ।।

यह श्वेतकेतु सदा रहेगा वत्स तेरे संग ही
विश्वासघात नहीं करेगा भरेगा रसरंग ही ।
एकाग्र बन तन्मोह तज सङ्कल्प शुचि साधन करो
जिससे सफल उद्देश्य हो वह युक्ति आराधना करो ॥

।। ९८ ।।

सुनकर सुजाता के वचन गंभीर मुनिदारक हुआ
उत्साह उत्स उमंग में मनधीर परिचारक हुआ ।
फड़की भुजायें वक्रभी आनन अरुण कुछ होगया
उस काल बालकका सकल विकलांग सङ्कट खोगया ॥

।। ९९ ।।

लघुतम ललित लघुपादुका श्रीचरणमें धारण किया
गन्तव्य तक पहुँचूँगा मैं यह वृत्त अवधारण किया ।
विकलांग साधारण परिस्थिति भी न बाधक बन सकी
अवलोक शिशुसङ्कल्प निष्ठा जटिलता भी थी थकी ॥

।। १०० ।।

चल पड़ा पुत्र प्रणाम कर मातुलको अपने सँगले
उत्साह उति उमंग ले शुचि अंतरंग तरंग ले ।
मुनिपुत्र के मनविपिनमें साहस सरस सुरतरु खिला
तमविघ्न विघटन हेतु उर उत्साहका दीपक जला ॥

।। १०१ ।।

कर स्वस्तिवाचन विप्रगण सम्पन्न प्रास्थानिक किए
होगे सफल हे मित्र कहकर सत्य आश्वासन दिए ।
सुतने पुनः माता चरणमें शिर नवा वन्दन किया
जयराम जयश्रीराम कह प्रस्थान प्रमुदित कर दिया ॥

।। १०२ ।।

औत्सुक्य दर्शनका पिताके मनमें तनु विकलांगता
दोनों सखी बनकर रही शिशुमें अरङ्ग सरङ्गता ।
पर सत्य शुचि सङ्कल्प शिशुका द्वन्द उभयको चीरकर
अविलम्ब अग्रेसर हुआ ममता महा प्राचीरतर ॥

।। १०३ ।।

थी परिस्थिति तनकी कठिन बालक वयस् दशवर्षका
पर सत्य सपना देखता मनमें रहा उत्कर्षका ।
आशीषकी पुंजी सुखद पाथेय शिवसङ्कल्प था
परमात्मपूत प्रकल्प था मनमें न क्वापि विकल्प था ॥

।। १०४ ।।

बालक महानिश्चय व्रती उसे भूख प्यास न बाँधतीं
अनुकूल बनकर सब समस्यायें उसे आराधतीं ।
छाले नहीं पगमें पड़े सुखे नहीं पल्लव अधर
बाहर से बालक मौन था भीतर बना अतिसय मुखर ॥

।। १०५ ।।

अविराम गति से चलरहा लगती न तनिक थकान थी
सत्वर मिलें मेरे पिता यह मदिर मधुर छकान थी ।
शीतल सुगन्ध सुमन्द मारुत विजन व्यजन डुला रहा
मानों सुपुण्य कहोलका सुतको समीप बुला रहा ॥

।।१०६ ।।

गिरिगुहा औघट घाट भी सब बनगए वरवाट थे
सङ्कट न करपाए किमपि वटुवर्यमें उच्चाट थे ।
जय जयति अष्टावक्र कह सुर वरषते नभ फूल थे
अनुकूल हो कर स्वस्तिवाचन हर रहे पथशुल थे ॥

।।१०७ ।।

हंसी त्रिशूली चक्रधर मङ्गल वटुकका कर रहे
सब शकुन अति अनुकूल हो आनन्द शिशुमें भर रहे ।
संभावना की भावना कर गा रहा शिशु गीत था
सानन्द पुलक परीत था विद्याविवेक विनीत था ॥

।।१०८ ।।(गीत)

रीती कुहू दारुण निशा अब शुचि वल्गुवसन्ती ।
अरुणिम मुख मधुमय उषा ॥ रीती0

अम्बर अंचल विकसित शतदल कुण्डल युगल विनिन्दित उत्पल
पलपल में रसमधुर घोलती, अर्वाची प्राची दिशा ॥ रीती०

तिमिर पटल विघटन में सक्षण थिरक रही अविविभा अनुक्षण।
मलय मधुर मन्दार विलक्षण दूर गई तन्द्रा तृषा ॥ रीती०

गई शिनिवाली अतिकाली कूजरही नभमध्य खगाली ।
छिड़क माध्वी भर प्याली सुनि शित संभावना कुशा ॥ रीती०

नमो राघवाय

॥ श्रीराघवः शन्तनोतु ॥

॥ नमो राघवाय ॥

अष्टावक्र महाकाव्य–सप्तम सर्ग

“संभावना”

॥ १ ॥

संभावना सफलता का स्वर्णिम सोपान मनोहर
लक्ष्य प्राप्त कर लेता सुख से साधक उस पर चढ़कर ।
सङ्कल्पों का यही परिणमन नर की यही परीक्षा
यही समय का सत् प्रयोग है गुण की यही समीक्षा ॥

॥ २ ॥

संभावना पूर्ति मंजुल है मङ्गल मनोरथों की
संभावना परम परमिति है श्रेय सरस पंथों की ।
संभावना सफलताओं की एकमात्र है कुंजी
संभावना मनुजता का बल यही पुरुष की पुंजी ॥

॥ ३ ॥

संभावना पुरस्कारों का अनुपम स्रोत अनूठा
संभावना विहीन जीव से सदा विधाता रूठा ।
संभावना ईश की भी है विमला संवित् शक्ति
संभावना साधना नर की यही भक्ति की भक्ति ॥

॥ ४ ॥

संभावना जिजीविषु जन की शाश्वत जिजीविषा है
संभावना भावना की भी सादर सिषेविषा है ।
संभावना मनुज की मङ्गल मण्डित महामनुजता
असंभावना पशुता ही है विसंभावना दनुजता ॥

।। ५ ।।

संभावना करे व्याख्यायित अन्तर पशु मानव का
संभावना हरे क्षणभर में दुःसह दुरित दानव का ।
संभावना व्यक्ति को जग में सक्रिय सदा बनाती
संभावना भावना का भी कटु कौलीन मिटाती ॥

।। ६ ।।

संभावना पुरुष को करती पुरुषार्थी संभावित
व्यक्तित्वों को कर प्रस्तुत करती प्रभाव अनुभावित ।
संभावना विहीन मनुज का क्या कोई जीवन है
पापपङ्क से पीन पीव वह तो पामर पामन है ॥

।। ७ ।।

संभावना सुप्तभावों को प्रातःकाल जगाती
संभावना नेत्र निद्रा भी बन रविरश्मि भगाती ।
संभावना दूर करती है दुरित दुराशा तन्द्रा
संभावना सौख्य की जननी परमानन्द सुसान्द्रा ॥

।। ८ ।।

संभावना सदा उद्बोधित करती कर्मचिकीर्षा
संभावना जीव की बनती भवपाथोधि तितीर्षा ।
संभावना ब्रह्मविद्या की परमपूत जिज्ञासा
संभावना भक्ति की भी है पावन प्रेम पिपासा ॥

।। ९ ।।

संभावना कर्म का कौशल यही धर्म मीमांसा
संभावना सृष्टि का सौष्ठव दूषणपूग जिघांसा ।
संभावना बिना प्राणी कुछ भी न कभी कर सकता
संभावना बिना साधक भव से न कभी तर सकता ॥

।। १० ।।

संभावना जीव का गुण है असंभावना दूषण
विसंभावना पाप पुरुष का संभावना विभूषण ।
संभावना सदाशाओं की राका रुचिर निशा है
संभावना निराशारजनी दलनी दिव्य दिशा है ॥

।। ११ ।।

संभावना छिपी मन में मृगनाभि में ज्यों कस्तूरी
संभावना बिना क्यों होंगी जीव सदीच्छा पूरी ।
संभावना ढूँढ लूँ अष्टावक्र निराशा छोड़ूँ
जीतवाद में खल बन्दी को बन्दी पितुकी तोड़ूँ ॥

।। १२ ।।

साहस करके जनकराज की संसद में मैं जाऊँ
प्रतिभा की प्रगल्भ प्रस्तुति कर पितु को शीघ्र छुड़ाऊँ।
तोड़ूँ बन्दी ऋषिकहोल की बन्दी छोड़ कहाऊँ
जनकसदसि मरुथल में ज्ञान की भागीरथी बहाऊँ॥

।। १३ ।।

संभावना प्रबल है मेरी मैं नहीं कहीं रुकूँगा
आज झुकाऊँगा विबुधों को मैं नहीं कहीं झुकूँगा ।
देखेंगे प्रतिभाप्रकर्ष मिथिला में पण्डित मेरा
जानेंगे उत्कर्ष अनुत्तम विबुध अखण्डित मेरा ॥

।। १४ ।।

अष्टावक्र बढ़ेगा आगे कौन उसे रोकेगा
होगा निष्कंटक पथ उसका कौन उसे टोकेगा ।
सब प्रतिकूल परिस्थितियाँ अनुकूल उसी को होतीं
जिसके मानसगृह में जलती संभावना की ज्योती ॥

।। १५ ।।

रुको नहीं अब चलते जाओ अष्टावक्र अनिद्रित
पग-पग करके बढ़ते जाओ पथ है वक्र अतन्द्रित ।
तू है वक्र वक्रपथ तेरा पगदण्डी पथरीली
सकरी गली घाट है औघट खोर पौर कँकरीली ॥

।। १६ ।।

फिर भी संभावना खोज ले मत अपने मन में डर
ईश्वर देंगे तुझे सफलता थोड़ा तो साहस कर ।
तू अमर्त्यसुत है ब्राह्मण है अष्टावक्र ऋषी है
करती साहस मेघ प्रतीक्षा संभावना कृषी है ॥

।। १७ ।।

तपबल माता का सतीत्वबल गुरुप्रसाद का संबल
युगपद् तेरे साथ सभी हैं मत कर मन को निर्बल ।
सात्विक धैर्य धर्म का सद्‌बल मित्र पतिव्रता नारी
आपत् काल परीक्षणीय हैं ये चारों सहचारी ।।

।। १८ ।।

तुम में सात्विक धैर्य विलसता शुद्धधर्म का सम्बल
ज्ञान मित्र संभावना नारी कहाँ रहा तू निर्बल ।
यदि शारीरिक दृष्ट्या निर्बल निज को तू कहता है
निर्बल के बल राम समझकर क्यों न सौख्य गहता है ।।

।। १९ ।।

मत डर अष्टावक्र जनक से नहीं भयङ्कर मिथिला
तेरी बोध चमत्कृति से मिथिला भी होगी शिथिला ।
मिथिला सीताजन्म मही वहाँ तुझको न्याय मिलेगा
वहीं तुम्हारी हृत् सरसी में सौख्य सरोज खिलेगा ।।

।। २० ।।

जनक तुम्हारा मान करेंगे तुम आचार्य बनोगे
श्रीसीता के गुरुगौरव से तुम कृतकार्य बनोगे ।
विकलांगता न बाधक होगी वह खलबाधक होगी
भौतिकता संबाधक होगी संयम साधक होगी ।।

।। २१ ।।

लोग हँसेंगे तुझे देखकर यह भ्रम क्यों करता है
क्यों निज के संकोचपाश में फँस करके मरता है ।
तेरी अष्टवक्रता पर यदि कोई मूर्ख हँसेगा
वह परमात्म को ही हँसकर भव में स्वयं फसेगा ॥

।। २२ ।।

विकलांगता की हँसी उड़ाना कभी न समुचित भाई
यह तो उस शिल्पी की कृति है जिसने सृष्टि बनाई ।
परमेश्वरी सृष्टि साँचे में भले बुरे सब ढलते
सुकृती हँस हँस कर पलते हैं रो रो पापी पलते ॥

।। २३ ।।

चलो देर मत करो मार्ग में जनक नगर हम देखें
पण्डितकुल पाण्डित्य परेखें प्रतिभा प्रथिमा पेखें ।
याज्ञवल्क्य मैत्रेयी गार्गी जैसे विबुध मिलेंगे
जनक यज्ञवेदी पर अगणित दीपक दिव्य जलेंगे ॥

।। २४ ।।

वहाँ मिलेगा वह खल बन्दी जो है पामर पापी
पाखण्डी वैतण्डिक पामर विद्वज्जन संतापी ।
जिसकी वाचाटता वागुरा बरबस फँसा फँसाकर
मार रही भूसुरसमूह को छल से त्रसा त्रसाकर ॥

।। २५ ।।

आज हराकर उस बन्दी को पितु का बदला लूँगा
है अक्षम विकलांग उक्ति यह जग की झुँठला दूँगा ।
कुछ भी नहीं असंभव जग में यह सदुक्ति चरितार्था
होगी आज पुरी मिथिला में यह लोकोक्ति यथार्था ।।

।। २६ ।।

यों विचार करते करते मिथिला नगरी में आए
अष्टावक्र विलोक जनकपुर मनो मुमुक्षा पाए ।
सस्वर वेद षडङ्ग पाठ से पलपल घुष्ट पुरी थी
पूर्ण पुरातन परिचर्चा से जागृतजुष्ट पुरी थी ।।

।। २७ ।।

कहीं सांख्य की कहीं योग की कहीं वैशेषिक चर्चा
कहीं गौतमी तर्क कर्कशा होती न्याय समर्चा ।
कहीं पूर्वमीमांसा पद्धति से श्रुतिवाक्य विचारण
कहीं कहीं वेदान्त रीति से उपनिषदर्थ निधारण ।।

।। २८ ।।

कहीं विशिष्टाद्वैत द्वैत अद्वैत पक्ष प्रतिपादन
कहीं कहीं रसरीति समन्वित प्रेमभक्ति सम्पादन ।
सीताराम ब्रह्म दम्पति की युगलोपासन रीति
छाई थी सर्वत्र जनकपुर श्रीराघवपद प्रीति ।।

।। २९ ।।

जहाँ स्वयं कमला सरिता बन बही प्रीति सरसाई
विमला शक्ति नदी बन करके जिस मिथिला में आई ।
जहाँ गण्डकी गंगा का शुचिसंगम नयन मनोरम
जहाँ राम जामाता होंगे मर्यादा पुरुषोत्तम ॥

।। ३० ।।

आह्लादिनी शक्ति ईश्वर की जहाँ मही से जनकर
खेलेगी गलियों में प्रमुदित सुता विनीता बनकर ।
सीता चरण तामरस रज से विलसित जो बड़भागिन
जिस शासक के कारण ही होगी वस्तुतः सुहागिन ॥

।। ३१ ।।

उस मिथिला में पहुँच विप्रसुत युगल सभा के द्वारे
निमिवंशावतंसभूपति को आते हुए निहारे ।
कोटि कोटि दिनकर समान ज्योतिर्मय मुकुट चमकता
भव्य भाल पर ललित तिलक विधु आनन अधिक दमकता ॥

।। ३२ ।।

अङ्ग अङ्ग पर विलस रहे थे ललित ललाम विभूषण
भवभूषण दूषण रिपुदूषण दूषण निमिकुल भूषण ।
तन राजस सात्विक था मानस गुणातीत नृप आत्मा
गेह में रहकर भी विदेह थे मन में थे परमात्मा ॥

।। ३३ ।।

देखे जनक दूर से आते ब्राह्मणतनय युगल को
निज समीप ज्यों समुपस्थित वैश्वानर युगल विमल को ।
किन्तु नहीं प्रच्छन्न तेज को नरपति जान सके थे
अष्टावक्र ब्रह्मवर्चस नृप नहिं पहचान सके थे ॥

।। ३४ ।।

देखा मात्र अष्टधा तनु विकलांग विप्रबालक का
अति विरूप टेढ़ा मेढ़ा रविवर्ष वयस पालक का ।
अति निर्भीक तदपि द्विजसुत हो रहा प्रविष्ट सदन में
निःसङ्कोच उदात्तभाव से सिंह यथा मृगवन में ॥

।। ३५ ।।

लखि विकलांग बाल का साहस क्रोध नृपति को आया
कर संकेत सेवकों को निजपथ से उसे हटाया ।
बोले क्रुद्ध राजसेवक अपसर अपसर द्विजमानव
नहीं दिख रहा सम्मुख आता तुझ को क्या सुगुणार्णव ॥

।। ३६ ।।

मिथिलापति का मार्ग रोककर तू निर्भीक खड़ा है
दीख रहा पीयूषकलित वस्तुतः सगरल घड़ा है ।
हट हट आगे से मत हठ कर हठी महीसुरशावक
क्यों स्पर्धा करता खगपति से लघुतम तित्तरलावक ॥

।। ३७ ।।

अष्टावक्र लगे कहने संबोधित करके जनक को
मनो हुताशन भर्त्सित करता अपरीक्षित कुकनक को ।
सुना पूर्व में था ऋषियों से जनक शास्त्रविज्ञाता
किन्तु दिखे तुम आज मूर्ख नृप यथा कलशनिर्माता ॥

।। ३८ ।।

पथिकों की है भीड़ किन्तु यह जग छोटा सा पथ है
अतिसम्मर्द संकुलित होकर पथ हो रहा विपथ है ।
किसे रोककर महाराज किसको प्रदेय यह पथ है
क्या कोई ईदृशी व्यवस्था तुझे ज्ञात सत्पथ है ॥

।। ३९ ।।

यदपि अलोचन बधिर योषिता यथा भारवाही को
प्रथम देय है पथ इनमें से अन्यतमित राही को ।
किन्तु राष्ट्रशासक को इनसे पहले देय सुपथ है
उससे भी पहले सुविप्र को प्रदातव्य सत्पथ है ॥

।। ४० ।।

मैं विकलांग विप्रबालक हूँ सब शास्त्रों का ज्ञाता
आया यज्ञनिरीक्षण करने हे भूतल के त्राता ।
सर्वप्रथम देना होगा अतएव मुझे ही यह पथ
क्यों अपसारित किया मुझे विकलित कर दिया मनोरथ ॥

।। ४१ ।।

सुन अष्टावक्रीय वचन खुली नृप की ज्ञानकपाटी
झुकी विप्र के पदपंकज में नृप की लघु लालाटी ।
क्षमा करो जाओ द्विजवर दे दिया प्रथम पथ मैंने
मुझे दण्ड दो किया मोहवश वितथ मनोरथ मैंने ॥

।। ४२ ।।

यत्र तत्र विचरो यथेच्छ निर्भय इस मिथिलापुर में
भोजन भजन करो प्रसन्न मन शङ्का न धरो उर में ।
इस भूतल में योग्य वस्तु जो वह सब है ब्राह्मण की
कृपा आपकी है हम पर ज्यों कृषिदल पर श्रावण की ॥

।। ४३ ।।

यों कह जनक मुड़े पीछे बढ़ गए विप्रसुत आगे
पर विदेह मन में मुनिसुत संबद्ध कुतूहल जागे ।
अहो बाल हा अष्टवक्र पर है अवक्र यह कितना
दुर्विभाग्य उतना ही दिखता कालचक्र है जितना ॥

।। ४४ ।।

द्वादशवर्ष मात्र लघुवय में इतना शास्त्रविचारण
मानों चारों वेद बने हों शिशुप्रतिभा के चारण ।
क्या अद्भुत प्रातिभ प्रकर्ष है अनुपम आनन ओजस्
दमक रहा दम-दम ललाट पर ब्राह्मणकुल का वर्चस् ॥

।। ४५ ।।

दिखने में विकलांग श्रेष्ठ पर कोटिक सकलांगों से
होकर भी अशुभांग कर रहा स्पर्धा शुभगाङ्गों से ।
संभावना कीदृशी इसकी कीदृक् इसका साहस
पंचानन सा निर्भय दिखता ऊर्जस्वल है मानस ॥

।। ४६ ।।

बोले अष्टावक्र कुपित हो नृप को संबोधित कर
उदित उक्ति से उत्तेजित कर उत्सुक उद्‍बोधित कर ।
हम तो मातुल भागिनेय मिथिलापुर में आए हैं
श्रौत यज्ञ देखने आपका मन में ललचाए हैं ॥

।। ४७ ।।

किंतु आपका दौवारिक निष्कारण रोक रहा है
जान मुझे विकलांग हास कर टप-टप टोक रहा है ।
सभा जनक की सभ्य जनों से सदा भरी रहती है
दौवारिक असभ्यता राजन पर प्रतीप कहती है ॥

।। ४८ ।।

कहा द्वारपालक ने हँसकर मैं न असभ्य कभी भी
तुम्हीं असभ्य वत्स दिखते हो चंचल चित्त अभी भी ।
जनक सभा में वृद्ध-वृद्ध विद्वान् विज्ञान अखंडित
सभी विश्वविश्रुत विराजते सभ्य पुरातन पंडित ॥

।। ४९ ।।

वहाँ बालकों का प्रवेश सर्वथा वत्स वर्जित है
शास्त्र भार्ष्ट में जहाँ अविद्या चणक कणक मर्जित है ।
तुम हो द्वादश वर्ष बाल अतएव वहाँ मत जाओ
करो दूर से नमन सभा को लौटो मत बल खाओ ॥

।। ५० ।।

बोले अष्टावक्र वचन कैसा प्रतीप प्रतिहारी
मैं हूँ वृद्ध प्रसिद्ध ब्रह्मविद् भूसुर नहीं भिखारी ।
मात्र अल्पवय में मैनें श्रुति का अध्ययन किया है
विद्या व्रत स्नात होकर फिर संयम अयन लिया है ॥

।। ५१ ।।

बोला द्वारपाल सचमुच द्विज बालक अतिवादी हो
हो अपंग अपसंग अप्रकृत अपगुण अवसादी हो ।
होकर द्वादश वर्ष मात्र हा वृद्ध स्वयं को कहते
चतरंगुल कर से तुम हठवश अंबर का फल गहते ॥

।। ५२ ।।

हो बाल अभी शुद्ध सरस्वती का कर सम्यक् उच्चारण
पंडित प्रकांड बन जाओ शिशु मत करो अभी छल धारण ।
चिरकाल प्रतीक्षित विद्या ही परिपक्व वत्स होती है
परिपक्व सूक्ति में ही जनती अति विमल धवल मोती है ॥

।। ५३ ।।

ज्यों कृषीबलों की कृषी समय पर ही पकती है
त्यों यथा काल यह विद्या भी परिपक्व सुरस छकती है ।
चुप रहो अधिक अब मत बोलो जा पढ़ो लिखो आश्रम में
बालक हो अभी न वृद्ध बनों अनुशासित रहो स्वक्रम में ॥

।। ५४ ।।

स्वाध्याय करो होकर सश्रद्ध सांगश्रुति का मुनि बालक
हो वृद्ध जनक के संसद में फिर आओ संयम पालक ।
अवलोकि विप्र वृद्धावस्था मैं तुम्हें नहीं रोकूँगा
सम्मानित कर प्रवेश दूँगा मैं तुम्हें नहीं टोकूँगा ॥

।। ५५ ।।

नहीं केश पकने से कोई वृद्ध कहा जा सकता
भग्नदन्त भी क्या वृद्धों की गणना में आ सकता ।
वयोवृद्ध क्या सिंह हस्तिगण्डस्थल भेदन करता
क्या कुण्ठित कुठार पादप का है छेदन कर सकता ॥

।। ५६ ।।

नहीं वृद्ध वर्षों से होता नहीं बन्धु से धन से
नहीं पलित केशों से होता वृद्ध शास्त्र शुचि मन से ।
लघु बालक भी स्वाधयायी हो अनूचान यदि होता
वही वृद्ध है पास उसी के सब जग संशय खोता ॥

।। ५७ ।।

अनूचान सस्वर श्रुतिपाठी वृद्ध प्रसिद्ध प्रतिष्ठित
होता सत्कृति विबुध सभा में ब्रह्मचर्य परिनिष्ठित ।
वयोवृद्ध क्या पड़ा खाट पर नहीं बिलबिलाता है
ज्ञानविहीन शतायुष मानव क्या आदर पाता है ॥

।। ५८ ।।

घुर घुर कण्ठ वात कंपित तन कैसे वेद पढ़ेगा
वयोवृद्ध होकर भी कैसे जनसन्देह हरेगा ।
लाला कलुषितवदन शतायुष सभा सभाजन कैसे
मन्दिर मध्य स्नेहवाति से रहित दीप हो जैसे ॥

।। ५९ ।।

नहीं अवस्था वृद्ध वृद्ध है वृद्ध ज्ञान से होता
वयोवृद्ध मणिहीन सर्प क्या कभी शान्ति से सोता ।
दन्तहीन जर्जरित पलित पददलित वृद्ध का जीवन
क्या सम्मानपात्र हो सकता जनता का बोझा बन ॥

।। ६० ।।

मैं कहता हूँ ज्ञानवृद्ध ही वृद्ध हुआ करता है
प्रातःकालिक मिहिर तिमिरपटली को हर सकता है ।
जो अन्याय सहिष्णु मूढमति क्या वह वृद्ध पुरातन
नहीं वृद्ध क्या शास्त्रज्ञाता यद्यपि वयसा नूतन ॥

।। ६१ ।।

होकर बाल प्रसिद्ध वृद्ध मैं अतः मुझे जाने दो
जनकसभा में प्रतिभाकौशल मुझको दिखलाने दो ।
साथ रहेंगे श्वेतकेतु मेरे श्रद्धास्पद मातुल
कुछ न बिगाड़ सकेंगे मेरा जनक सभासद वातुल ॥

।। ६२ ।।

द्वारपाल ने कहा द्विजोत्तम जनकसभा में जाओ
बन्दी को कर वाद पराजित विमल विरुद भी पाओ ।
उसने अमित ब्राह्मणों के जीवन वैभव को खोया
सभामध्य कर विजित सभी को सागर मध्य डुबोया ॥

।। ६३ ।।

अष्टावक्र विहँसकर बोले द्वारपाल अब सुन लो
तथ्य लोक का सावधान फिर रत्नमनोहर चुन लो ।
जो अन्यों को कण्टक बोता उसे शूल मिलते हैं
उसके मानस पंकज में बहुशोक शंकु झिलते हैं ॥

।। ६४ ।।

यों कह हुए प्रविष्ट सभा में अष्टावक्र अशङ्कित
हुआ दूर से देख हतप्रभ बन्दी उन्हें प्रशङ्कित ।
यथा सिंह को देख हरिण भयभीत सिकुड़ जाता है
यथा श्येन अवलोक शोकयुत लावक भय पाता है ॥

।। ६५ ।।

सूख गया किसलयाधर उसका हुआ देह में स्पंदन
मनो तामरस पत्र शुष्क हो देख शिशिर द्विजनंदन ।
थर-थर कँपने लगा बंदि था स्विन्न शरीर हुआ था
क्या अवलोक ग्रीष्म भास्कर को ऊलू अधीर हुआ था ॥

।। ६६ ।।

बोले अष्टावक्र जनक से कहाँ तुम्हारा बंदी
करूँ पराजित कर उसको मैं सभा मध्य द्विजनांदी ।
जिसने छल से जीत द्विजों को जल के मध्य डुबोया
जिसने मत्सरवश अपने हित विषकण्टक ही बोया ॥

।। ६७ ।।

बोले जनक बिहँसकर सचमुच तुम बालिश बालक हो
पालक हो निज भ्रम प्ररोह के निग्रह संभालक हो ।
अति तेजस्वी सुर बंदी को कैसे जीत सकोगे
कैसे अल्प सूक्ति से वारिधि का ऋण रीत सकोगे ॥

।। ६८ ।।

कैसे लघुतम कर करजों से दिनकर को ढाँकोगे
कैसे चतुरगुल स्वपाणि से चतुर्व्योम मापोगे ।
जो सर्वथा असंभव संभव उसे बनाने आए
बाल हंस हो सिर पर मंदर भार उठाने आए ॥

।। ६९ ।।

अष्टावक्र तड़क बोले मेरा इस कारण ही भव
जो सर्वथा असंभव उसे बनाऊँगा मैं संभव ।
संभावना उसी को कहते जो है संभव करती
विधि के लिए असंभव को भी विस्मय हरि में भरती ॥

।। ७० ।।

संभावना वही है मेरी नित्य सहचरी नृपवर
उसके बल पर आज बनूँगा जनकसभा में जित्वर ।
आप मूक दर्शक हो देखें मेरा मति कौतूहल
अष्टावक्र सबल है राजन क्वापि नहीं वह निर्बल ॥

।। ७१ ।।

बोले जनक विप्रदारक कुछ प्रश्नों के उत्तर दो
फिर प्रविष्ट हो राजसभा में बंदी को चुप कर दो ।
मैं मिथिला का भूप जनक हूँ प्रथम मुझे परितोषो
फिर वाग्वैभव वाङ्वाग्नि से बंदि वारिनिधि शोषो ॥

।। ७२ ।।

कौन तीस अंगों वाला है द्वादशांश हैं किसमें
उसे बताओ अरे तीन सौ साठ विराजें जिसमें ।
अष्टावक्र जनक नृप को आशिष दे करके बोले
उनके मानस नवघट में विज्ञान सुधा रस घोले ॥

।। ७३ ।।

दिवस निशा के चौबिस घंटे छह ऋतु जहाँ विराजें
द्वादश मास त्रिशत् षष्टी दिन वही काल शुभ साजे ।
बोले जनक साधु द्विज बालक धन्य तुम्हारी प्रतिभा
आश्चर्यान्वित मुझे कर रही दिव्य बोधमय शोभा ॥

।। ७४ ।।

एक प्रश्न का फिर उत्तर दो निष्प्रमाद हो बालक
होवोगे द्वादशादित्य ज्यों द्विजकुल शतदल पालक ।
किनका मुख अश्वनी सरिस है कौन बाज सी गिरती
कौन गर्भ आधायक इनमें कौन पुत्र ये जनतीं ॥

।। ७५ ।।

अष्टावक्र विहँस बोले वे चपलाएँ दो राजन
सुरपति प्रेरित सुख से जनतीं जल परिजन्य महाघन ।
बोले जनक चार प्रश्नों के फिर द्विजवर दो उत्तर
हो जाओगे विप्रवंश के तुम अकलंक यशस्कर ॥

।। ७६ ।।

नेत्र खोलकर कौन शयन रत जनकर कौन न उगता
कौन हृदय से हीन वेग से बढ़ता कौन उमगता ।
(अष्टावक्र) झष सोता है नेत्र खोलकर, अन्न न जनकर उगता
हृदयहीन पाषाण नदी गण जव से बढ़के उमगता ॥

।। ७७ ।।

अष्टावक्र वचन वैभव से हुए विदेह प्रभावित
सजल हो गए नयन युगल मन हुआ अनघ अनुभावित ।
किया प्रणाम चरण पर सिर धर विह्वल हो नृपति ने
क्षमा माँगकर विनय प्रार्थना संस्तुति की सन्मति ने ॥

।। ७८ ।।

प्राकृत नहीं विलक्षण तुम हो धन्य-धन्य मुनिबालक
बालक नहीं वृद्ध हो गुरुवर भूसुर कुल प्रतिपालक ।
नहीं तुम्हारे तुल्य जगत में कोई आज मनस्वी
चलो मान्यवर राज्यसभा में तापस तनय तपस्वी ॥

।। ७९ ।।

द्वार दे रहा आज तुम्हें मैं यह बन्दी है आगे
जो प्रलाप करता अभीत वत जम्बूक ज्यों भय त्यागे ।
अष्टावक्र शास्त्रचर्चा में इस बंदी को जीतो
इसका मानस जलधि आज तुम दंभ से इसे रीतो ॥

।। ८० ।।

आज देख लें विप्र सभासद् सद् विभूति का संगर
समारम्भ संभ्रम शून्य हो वचन युद्ध अभयंकर ।
देखें आज विधाता किसको विमल यशश्री देता
ब्राह्मण बंदी छोड़ बनेगा कौन कौन सुख लेता ॥

।। ८१ ।।

बन्दी ने फिर अष्टावक्र वपुर्वैभव को देखा
दुर्दिन तुहिच्छिन्न नवल नीरद में ज्यों रवि रेखा ।
वक्र आठ अंगों से तन था आनन उडुप अवंकित
उसपर चमक रही थी ब्रह्मतेज की विभा अशंकित ॥

।। ८२ ।।

यद्यपि भुग्न भाल भूसुर का रहा महिप को छूता
फिर भी उनका चित्त रहा पातक रजरास अछूता ।
लघु-लघु चरण सरोज समर्चित दिव्य पादुका द्विज की
भाग्य भूमि का बढ़ा रही थी अवलंबन बन रज की ॥

।। ८३ ।।

कटि तट पर कौपीन पीन कर रहा ब्रह्मवर्चस्व को
लसित मेखला अशिथिल बंधन रहा वितर तेजस को ।
कमठाकृति विकलांग वपुष के नहीं व्यक्त अवयव थे
फिर भी वितर रहे भूसुर कुल को अमोघ गौरव थे ॥

।। ८४ ।।

श्वेत मखोपवीत सुंदर था सव्य अंश पर लसता
प्रवर त्रितय ग्रंथि विभूषित अधर्मियों को हँसता ।
यद्यपि बाहर अक्षमता थी पर भीतर थी क्षमता
बहिरंगी थी अंग विषमता अंतरंग में समता ॥

।। ८५ ।।

लघु-लघु ललित-ललित करजों के विमल नखों की ज्योति
बरसाती दर्शक के मन में निर्मल बुद्धि न सोती ।
आनन पर अकलंक कांति थी अति निर्दोष विलोचन
उन्नत मस्रण कपोल युगल पर ब्रह्मतेज अगमोचन ॥

।। ८६ ।।

तेज बिलोक विबुध बंदी अतिशय अभिभूत हुआ था
वाद-विवाद बिना ही द्विज से वह पराभूत हुआ था ।
मुख का दिवस दीप जैसा अति मलिन प्रकाश हुआ था
स्पंदित तन पर भय विस्मय का ऊष्म विकास हुआ था ॥

।। ८७ ।।

मन में मान हार बंदी ने अपना प्रबल पराजय
जान लिया निज अपशकुन से करके दृढ़तम निश्चय ।
होकर आज पराजित मैं द्विजवर का भक्त बनूंगा
पूजा कर विकलांग बाल की विषय विरक्त बनूंगा ॥

।। ८८ ।।

इस विभूति के चरणों में करके सर्वस्व समर्पण
आज करूँगा श्रुति देवी का निज श्रद्धा से तर्पण ।
आज दिखाऊँगा लोगों को प्रज्ञा सुफल निराग्रह
आज प्राप्त कर लूंगा मैं परमेश्वर का सदनुग्रह ॥

।। ८६ ।।

पर करके बहिरंग हास शिशु अंतरंग तो जानूँ
वाद-विवाद व्याज से प्रस्तुत शिशु प्रतिभा सम्मानूँ ।
इसी व्याज से बालक की प्रतिभा को जगत निहारे
अष्टावक्र विशद् चरित्र पर अपना सर्वस्व वारे ॥

।। ९० ।।

बोला बंदी बिहँस यहाँ विकलांग कहाँ से आया
कौन अष्टधा वक्र बाल को राजसभा में लाया ।
जो न सँभाल रहा तन को वह क्या शास्त्रार्थ करेगा
लघु पिपीलिका का सावक कैसे वारिस तरेगा ॥

।। ९१ ।।

सुन बंदी का वचन हँस पड़े जनक सभासद सारे
थे यद्यपि अभिभूत भानुभिग ज्यों खद्योत बिचारे ।
अंतरंग से रोकर भी बाहर से हँसे ठठाकर
ताली बजा-बजाकर पग से ठोकर मार हटाकर ॥

।। ९२ ।।

याज्ञवल्क्य औ शतानंद ने यद्यपि सबको रोका
फिर भी कोई समझ न पाया प्रकृति पवन का झोंका ।
लख असभ्यता सभासदों की जनक हुए आमर्षित
उनको शांत किया इंगित से औद्दालक उत्कर्षित ॥

।। ६३ ।।

बोले अष्टावक्र जनक से होकर कुछ उत्तेजित
घन गंभीर गर्जना करके अरस-सरस संतेजित ।
शांत रहें सब सभ्य सभा में नहीं करें कोलाहल
पियें आप अब अमृत मुझे ही पीने दें हलाहल ॥

।। ६४ ।।

हे विदेह मैनें समझी थी राजसभा धीरों की
पर विरंचि की विडंबना यह संसद आभीरों की ।
नहीं यहाँ कोई ब्राह्मण है चर्मकार सब आए
जो तजि धाम कामकिंकर चमड़ों पर रहे लुभाए ॥

।। ६५ ।।

जहाँ विराजित याज्ञवल्क्य हों औ गार्गी मैत्रेयी
वहाँ चर्म पर यह आकर्षण यहाँ खड़ी खारेई ।
वृहदारण्यकश्रुतियों का मंगल संवाद जहाँ हो
क्या सोचा था साधारण विप्लवित विषाद वहाँ हो ॥

।। ६६ ।।

कैसा सपना देख रहा था क्या प्रत्यक्ष दिखा है
अरे चाखने गया सुधारस क्योंकर गरल चखा है ।
लख मेरा विकलांग वपुष मुझपर जो हँसने वाले
स्वयं उन्होंने उर अंतर में अघ उलूक हैं पाले ॥

।। ९७ ।।

ईश्वर की कृति पर हँसकर अपराध किया जो तुमने
उसके फलस्वरूप भीषण विषपान किया है तुमने ।
विकलांगता विशेष परिस्थिति कर्महीन मानव की
पर हँसकर तुमने तोड़ी सीमा दारुण दानव की ॥

।। ९८ ।।

सबकुछ आज सहन करके मैं गरुअ गरल पी लूंगा
सकलांगों से सुखी उपेक्षित रहकर भी जी लूंगा ।
नहीं बुझूंगा झंझाओं से मैं दीपक हूँ मणि का
नहीं उड़ूंगा प्रलयानल में मैं हूँ अणु स्थिर कणिका ॥

।। ९९ ।।

ज्यों-ज्यों तुम परिहास करोगे, त्यों-त्यों होगी उन्नति
इसी पाप से तुम सबकी होगी अति दारुण अवनति ।
अति मंथन से ही दधि से नव-नव नवनीत निकलता
तप्त हुतास योग से सत्वर यति भी स्वयं पिघलता ॥

।। १०० ।।

हँसो अट्टहासीय नाद में मुझे देख सब भूसुर
कभी न कभी पिघल जाएगा लाक्षाधर्मी यह उर ।
कभी न कभी बदल जाएगा समय चक्र यह मेरा
कभी न कभी निगल जाएगा दिनकर उदय अंधेरा ॥

।। १०१ ।।

अरे चर्मप्रिय चर्मकारगण जाकर पनहीं सी लो
मूढ़ हरिन ज्यों जाकर मरु मरीचिका का पय पी लो ।
ओस चाटकर प्यास बुझा लो शून्य वियत में सोओ
तारे गिनो रातभर सारे सिर धुन-धुनकर रोओ ॥

।। १०२ ।।

जनक सभा यह नहीं तुम्हारी केवल शव-शाला है
नहीं सुधा की प्रपा निष्त्रपा कश्मल में हाला है ।
आपण जीर्ण पदत्राणों का हास्य मनुजता का है
आर्ष सभ्यता का उत्पीड़न लाश दनुजता का है ॥

।। १०३ ।।

धन यौवन विद्याभिमान से मत्त सभ्य हैं तेरे
यहाँ महीसुर नहीं एक भी चर्मप्रिय बहुतेरे ।
चर्मकारमय मंदिर में आ मैं अति पछिताता हूँ
राजहंस बकमध्य पहुँचकर अतिशय सकुचाता हूँ ॥

।। १०४ ।।

नहीं चाहता सभा सभाजन नहीं चाहता वैभव
मैं न सहूँगा सकलांगों द्वारा विकलांग पराभव ।
नहीं दिखाऊँगा क्लीवों जैसी निर्मूल तितिक्षा
नहीं करूंगा अब सिर धुन-धुन निज दौर्भाग्य समीक्षा ॥

।। १०५ ।।

होगा तन विकलांग भले ही बुद्धि नहीं विकलांगी
तुम सब हो विकलांग बुद्धि से सुमति नहीं सकलांगी ।
जो तुम कभी नहीं कर पाए वह कर दिखलाऊँगा
अष्टावक्र मनुजता को जीना भी सिखलाऊँगा ॥

।। १०६ ।।

नहीं अनादर हुआ हमारा यह परिभव ईश्वर का
जिसने है विकलांग बनाया मुझको फल मत्सर का ।
जनक जा रहा हूँ उल्टे पग आज सभा से तेरे
क्षण भर वहाँ न रहना जिसमें चर्मकार बहुतेरे ॥

।। १०७ ।।

जहाँ न ब्राह्मण की ब्राह्मणता, मानव की मानवता
जहाँ नग्न तांडव करती हो दुरुत दुष्ट दानवता ।
जनक न अष्टावक्र रहेगा ऐसी राजसभा में
क्षण भर भी सुख नहीं लहेगा कुनिशा कुहू निभा में ॥

।। १०८ ।। (गीत)

विकलांग जन का स्वागत संभावना करेगी ।
अनुकूल हो परिस्थिति संकट सकल हरेगी ॥

आएगी प्रतिपदा फिर शीत पक्ष की गगन में,
छाएगी संपदा फिर कुसुमों के मधु विपिन में,
संकल्प सब में शाश्वत संभावना भरेगी। विकलांग०

फिर ग्रीष्म में छिड़ेगा संगीत मधु का सरगम,
फिर काल निशि में होगा अमृतांशु रश्मि संयम,
संसृति सकल समागत संभावना हरेगी। विकलांग०

कंटक विपिन में पाटल एक बार फिर खिलेगा,
मरणेच्छु को सुधाफल एक बार फिर मिलेगा,
समाधान सर्ग मुखरित संभावना चरेगी। विकलांग०

नमो राघवाय

॥ श्रीराघवः शन्तनोतु ॥

॥ नमो राघवाय ॥

अष्टावक्र महाकाव्य–अष्टम् सर्ग

“समाधान”

॥ नमो राघवाय ॥

।। १ ।।

समाधान ही सर्ग काव्यका चरम लक्ष्य है
या परोक्ष प्रत्यक्ष किन्तु यह सतत् रक्ष्य है ।
भौतिक या आध्यात्मिक सभी समस्याओं का
समाधान प्रतिपाद्य सुकवि वरिवस्याओं का ॥

।। २ ।।

समाधान ही लक्ष्य काव्य का अन्तिम होता
समाधान से तुष्ट शान्तमन साधाक सोता ।
समाधान ही सदा अभीप्सित सबको होता
समाधान से ही मानव निज संशय खोता ॥

।। ३ ।।

सच पूछो तो सृष्टि अलौकिक महाकाव्य है
सुकवि प्रजापति सर्ग प्रबन्ध विधा सुनव्य है ।
उत्तम मध्यम अधम श्रेणियाँ दिखें यहाँ भी
नायक प्रति नायक से साधक सिखें यहाँ भी ॥

।। ४ ।।

शब्दमयी यह सृष्टि शाब्दिकोंके भी मतमें
या परिणाम विवर्त अनिश्चय यद्यपि विमत में ।
किन्तु तथ्य यह सर्वमान्य है शाब्दिकसृष्टी
परिणत या विवृत्त होती है ईश्वरदृष्टी ॥

।। ५ ।।

यही प्रजापति सुकवि विविधस्वरूप नामों से
होते रहे प्रकट अद्यावधि परिणामों से ।
इन्हें कहें वाल्मीकि व्यास श्रीतुलसीदास भी
सुकवि प्रजापतिरूप चिन्मय विलास भी ॥

।। ६ ।।

रामायण है जगत राम इसके हैं नायक
इसमें उनका वास प्रेरणासे सुखदायक ।
दुर्जन सज्जन भेद सदा दीखता इसीमें
मानव विधि निषेधकी विधि सीखता इसीमें ॥

।। ७ ।।

राजा सभी रसोंका जो श्रृंगार प्रथित है
वही काव्य सृष्टीका शुभ उपहार कथित है ।
नव-नव रस उन्मेष इसीके सुपरिणाम हैं
गिरागवी के गव्य नव्य श्रवणाभिराम हैं ॥

।। ८ ।।

राम सनातन तत्व सुकवियों के हैं नेता
अभिधा या व्यंजना विधा के वही प्रणेता ।
सीता आह्लादिनी रामरम्यता शक्ति हैं
वही राष्ट्रकी शक्ति विमल अभिनव विभक्ति हैं ॥

।। ९ ।।

रावण ही प्रतीप भावोंका कुटिलावर्तन
नग्न कर रहा काव्यसृष्टीमें ताण्डव नर्तन ।
अभिव्यक्तियाँ सनातन सदसत् भावोंकी हैं
कवितायें सम विषम सुकवि चितचाओंकी हैं ॥

।। १० ।।

किन्तु सभी काव्योंका अन्तिम एक लक्ष्य है
समाधान सामस्यिक संभृतिवत् सुरक्ष्य है ।
वर्तन रामादिवत् कदापि ना रावणादिवत्
यही काव्य का समाधान है अधुना यावत् ॥

।। ११ ।।

समाधान करलिया जनकने क्षमा माँगकर
शान्त हो गए अष्टाक्र स्वरोष त्यागकर ।
होकर फिर सन्तुलित लक्ष्य सुस्मृतकर अपना
भूले दुर्व्यवहार पूर्वका ज्यों हो सपना ॥

।। १२ ।।

अष्टावक्र पुनः बोले धर धैर्य जनक से
ज्ञान हुताशनमें सुपरीक्षित स्वान्तकनक से ।
जनक तुम्हारा बन्दी अतिशय अतिवादी है
श्रुतिसिद्धान्त विनिन्दी पामर कुप्रमादी है ॥

।। १३ ।।

उसे नृपति तत्काल हमारे निकट बुलाओ
ब्राह्मणद्रोही पातकपंकिलवदन दिखाओ ।
नहीं हमारे सम्मुख पलभर ठहर सकेगा
पवि से टकरा कुसुमसदृश क्षत विखर मरेगा ॥

।। १४ ।।

बन्दी बोला सुप्तसिंहको यहाँ जगाकर
तुमने किया अनर्थ व्यर्थ मुझको भड़काकर ।
उचित न होगा शिरिष सुमनका शैल विघट्टन
हिमकणका ज्यों ग्रैष्म चण्डदीधिति संघट्टन ॥

।। १५ ।।

अष्टावक्र लगे कहने मिथिलेश्वर सुनिए
अति निःसार वचन बन्दीका मनमें गुनिए ।
सभी शैल मैनाक सदृश क्या कहो कभी भी
जिसका वासव काट न पाए पंख अभी भी ॥

।। १६ ।।

इस शास्त्रीय समरमें आप रहें निर्णायक
पक्षपात से रहित तटस्थ राजकुलनायक ।
जिससे कोई कर न सके अतिचार हमारा
सभी सुनें दत्तावधान सुविचार हमारा ॥

।। १७ ।।

पूर्वपक्ष पर उत्तरपक्ष रहेगा मेरा
निग्रह नहीं चलेगा उसमें बन्दिन् तेरा ।
हम दोनों के बीच रहेंगे नृप निर्णायक
वही बनेंगे अपाराधी के दण्ड विधायक ॥

।। १८ ।।

बन्दी बोला एक अग्नि औ एक विधाता
एक सूर्य निज अमृतरश्मि से सब जग त्राता ।
एक वीर विबुधेन्द्र निखिल दानवकुल निहन्ता
एक मात्र यमराज निखिल चर अचर नियन्ता ॥

।। १९ ।।

=नहीं नहीं इन्द्राग्नि मित्र हो युगल यहाँ चरते हैं
नारद पर्वत युगलदेवऋषि भय हरते हैं ।
विबुध वैद्य भी युगल चक्र दो दिखते रथके
दंपतियुगल रहा करते हैं संसृति पथके ॥

।। २० ।।

=तीन सृष्टि के कर्म तीन हैं विश्रुत सुरवर
तीन वाजपेयाङ्ग तीन अध्वर्यु मनोहर ।
तीनलोक त्रयकाल अवस्था तीन विदित है
तीन अग्नि त्रैवर्ण तीनगुण त्रयसंसृति है ॥

।। २१ ।।

=आश्रम चार विदित ब्राह्मण के भवन गिनाए
चार वर्ण निर्वहण यज्ञ का कर मन भाए ।
चार दिशायें ह्रस्व दीर्घ प्लुत हल् उच्चारण
चार गिराके चार भेद भवविपन्निवारण ॥

।। २२ ।।

=पंच अग्नि के भेद पंक्ति के पाँच चरण हैं
पंच यज्ञ इन्द्रियाँ पाँच ही ज्ञानकरण हैं ।
पंच प्राण कुसुमायुधके भी पाँच निशित शर
पंचीकृत महापूत पंच औ नदी पंच वर ॥

।। २३ ।।

=षट् सुधेनु दक्षिणा दानमें पातक हरतीं
कालचक्रमें षड्ऋतुयें भी सदा विहरतीं ।
मनसमेत इन्द्रियाँ विदित षट् षट् कृत्तिकायें
यज्ञविदित साद्यस्क षड्श्रवण कर सुख पायें ॥

।। २४ ।।

=सात ग्राम्यपशु सात वन्यपशु विदित सृष्टिमें
सात लोक औ सात छन्द वैदिक सुदृष्टिमें ।
सात विदित ब्रह्मर्षि सात पूजन विधान हैं
सात सुखद स्वर विदित श्रव्य करते सुगान हैं ॥

।। २५ ।।

=अष्टरज्जु संवद्ध सजुस् अगणित भर तौले
अष्टचरण वो शरभ केशरी शिरपर डोले ।
अष्टभेद वसुओंके देवों में भी सुने हैं
अष्टगुणों का यूप यज्ञमें विबुध बुने हैं ॥

।। २६ ।।

=सामधेनी नौ मन्त्र सृष्टि के नौ सुयोग हैं
नव शक्तियाँ ईशकी नवग्रहदलित रोग हैं ।
वृहतीका प्रतिचरण नवाक्षर नवधा भक्ती
नव संख्या भी सर्वश्रेष्ठ नव है संभक्ती ॥

।। २७ ।।

=दस आशाएँ जगतविदित दस जीव दशायें
बन्दनीय दस सर्वविदित दस प्राणदिशायें ।
दस निन्दक निश्चिन्त दिवानिश निन्दा करते
दसधा प्रेमभक्तिसे साधक हरि उर धरते ॥

।। २८ ।।

=एकादश इन्द्रियाँ विषय उनके एकादश
एकादश हैं दोष जीव के गुण एकादश ।
एकादशी विमल व्रत जनका विपतिविदारक
एकादश है यूप यज्ञके भवभयदारक ॥

।। २९ ।।

=द्वादश मास युक्त कहलाता है संवत्सर
द्वादशपाद सुने जति हैं जगतीके वर ।
द्वादश दिवसोंमें सम्पन्न सुखद प्राकृत मख
द्वादश अदितिकुमार सभी को देते हैं सुख ॥

।। ३० ।।

=त्रयोदशी तिथि परम प्रशस्ता कही गई है
द्वीप त्रयोदशयुक्त भूमि सुखमोदमयी है ।
शेष श्लोकका अर्धखण्ड नहीं बन्दी बोला
जनकसभामें हार गया आसन से डोला ॥

।। ३१ ।।

अष्टाक्र पराजित कर बन्दीको बोले
शेष श्लोक पूर्ण कर मङ्गल मधुरस घोले ।
दिवस त्रयोदश केशीसे हरि किए महारण
त्रयोदशाक्षर अतिजगतीके चरण विलक्षण ॥

।। ३२ ।।

बजीं व्योम दुन्दुभियाँ देव सुमन बहु वरषे
षोडशविधि से पूज विप्रसुतको मन हरषे ।
वीणाशंखनिनाद सभाषदकुल जय-जय ध्वनि
त्रिभुवन में भर गई प्रफुल्लित हुए मनुजमुनि ॥

।। ३३ ।।

विबुधबन्दीवर हार गया हाहा हाहाकर
ब्राह्मण हवन कर रहे सादर थे स्वाहा कर ।
अधोवदन था ध्यानपरायण सुरवरबन्दी
पढ़ने लगे सुखी सस्वर ब्राह्मण नवनान्दी ॥

।। ३४ ।।

जनक सभा भर गई महीसुर जयघोषों से
विप्राली तरगई तरुण सद्गुण कोषों से ।
नाच उठे वेदज्ञ महीसुर जनक सभाषद
राकाशशि अवलोक यथा वारीश महाह्रद ॥

।। ३५ ।।

सिंहासनसे उठ विदेह भी शीष नवाये
अष्टावक्र विरुद विलोक थे बहुत लजाये ।
षोडशविधि से पूज विप्रकुल कुमुदचन्द्र को
किया सभाजित राजसभा में भूसुरेन्द्र को ॥

।। ३६ ।।

वरण किया आचार्य रूप में अष्टावक्रको
जीत लिया गुरुकी करुणासे कालचक्रको ।
पाया विमल समाधि योग निमिकुलभूषणने
निर्विकल्प निष्ठा पाई विगलित दूषणने ॥

।। ३७ ।।

अष्टावक्र कृपा से जीवन्मुक्त हो गए
गेहमें रहकर भी विदेहता युक्त हो गए ।
एक चरण भूतल पर दूजा है रोहण पर
दिवसत्रय पर्यन्त दशा यह योगिसुदुष्कर ॥

।। ३८ ।।

अष्टावक्र कृपा से हुए नृप श्रुतिगण पारद
धर्मराजनयनिपुण विरत विज्ञान विशारद ।
दृढ़ वैराग्य खड्ग से कर जगदङ्घ्रिपछेदन
मुक्तदशाको प्राप्त हुए नृप कर भवभेदन ॥

।। ३९ ।।

बाहर से दिखते थे जनक विषय सुख भोगी
भीतरसे थे रामवियोगी दृढतम योगी ।
द्वन्दातीत महीपति त्रिगुणातीत हुए थे
प्राप्त अभयपद परम विरत सुविनीत हुए थे ॥

।। ४० ।।

युवती परिरंभण पावकके संश्लेषणमें
नहीं भेद भासता वियोजन संश्लेषणमें ।
वृत्ति अखण्डित शुचि निरुपाधि समाधि लग गई
हृदय निलयमें रामप्रीतिकी रीति जग गई ॥

।। ४१ ।।

बोले अष्टावक्र नृपति तुम मुक्त हो गए
ब्रह्मज्ञान संपन्न विरति संयुक्त हो गए ।
असिधाराव्रत ज्ञानमार्ग में आप निर्वहें
शीतोष्णादि सभी द्वन्दोंको सहज ही सहें ॥

।। ४२ ।।

असंकोच मिथिलाधिप गुरुदक्षिणा दीजिए
सद्‌गुरुका आशीष प्राप्त कर सुयश लीजिए ।
इस बालिश बन्दीको वारिधि में डुबाइए
द्विजावमानन का इसको कटुफल चखाइए ॥

।। ४३ ।।

इसने विविध ब्राह्मणों का अपमान किया है
उन्हें निकत्तर कर सागर में डुबा दिया है ।
मैं इससे उन सबका यह प्रतिशोध ले रहा
होकर भी अविरुद्ध निसर्ग विरोध ले रहा ॥

।। ४४ ।।

बोला बन्दी द्विजकुमार मैं वरुण पुत्र हूँ
नहीं मरूँगा जलमें भी स्थिर ब्रह्मसूत्र हूँ ।
जलमें मज्जित होकर भी कोई न मरा है
प्रतिब्राह्मण मानस में श्रुतिका अमृत भरा है ॥

।। ४५ ।।

कुछी क्षणो में सभी विप्र जीवित आएंगे
अष्टावक्र वदन विलोक अतिसुख पाएंगे ।
ऋषि कहोल भी सर्वप्रथम अवलोक पुत्रको
कर लेंगे निज नेत्र सफल लख अष्टावक्र को ॥

।। ४६ ।।

द्वादश वार्षिक वरुण यज्ञ संपन्न कराने
मैंने भेजे वरुणलोक सब विप्र पुराने ।
ऋषि कहोल भी वरुण यज्ञ देखने गए हैं
होकर नीर निमज्जित वे हो रहे नये हैं ॥

।। ४७ ।।

बन्दीवेष में वरुण पुत्र मैं मिथिला आया
तातस्वार्थ साधनहित यह नाटक करवाया ।
आज छोड़ अभिमान मैं अष्टावक्र समर्चन
करता भक्तिसमेत ब्रह्मविद्याका अर्चन ॥

।। ४८ ।।

वय से नहीं ज्ञान से ब्राह्मण वृद्ध कहाता
निरवद्या विद्या से ही वह पूजा जाता ।
गुण ही पूजास्थान न लिंग न रूप अवस्था
नहीं जाति नहीं वंश यही है वेद व्यवस्था ॥

।। ४९ ।।

शिशु भी विद्यावृद्ध यदा ही पूजा जाता
बाल दिवाकर भी जलार्घ्य है सबसे पाता ।
लघुता भी सदैव गुरुता हित समुचित होती
लघु शोपी भी जनती है अतिमंजुल मोती ॥

।। ५० ।।

ललित ललित लघुतमललाम नृपमुकुट विहारी
लघुतम भी परमाणु लसे रविमण्डल चारी ।
लघुतम पक्षी गगन मध्य निभ्रन्ति विहरता
लघु शशांक शंकर शेखर बन भवभय हर्ता ॥

।। ५१ ।।

प्रातः सविता सबको लघु दिखा करता है
उदय मात्र से भुवन तिमिर पटली हरता है ।
नहीं पूज्य पूजा में होती लघुता बाधक
अथवा नहीं कदाचित् उसमें गुरूता साधक ॥

।। ५२ ।।

गुरूता लधुता युगल धर्म हैं सीमित मन के
इनके भी अतीत होते गुण रघुवर जन के ।
अति मानुष गुण-गण से मानव पूजा जाता
देख इन्हीं उत्कर्षों को दानव जल जाता ॥

।। ५३ ।।

होकर भी उच्चस्थ निम्न जिनकी सम्भूति
कभी न वे जन सह सकते परकीय विभूति ।
नहीं सभी के वश का अन्योत्कर्ष सहन है
निरपराध तृण को भी करता भष्म दहन है ॥

।। ५४ ।।

नदी सरोवर सदृश जगत में जन बहुतेरे
जो निज उन्नति अंबु प्राप्त कर हुए बड़े रे ।
किंतु समुद्र समान सुजन अत्यन्त विरल हैं
जो बिलोक बढ़ते राकाविधु तरल-तरल हैं ॥

।। ५५ ।।

अष्टावक्र को पूज आज मैं धन्य बनूँगा
कर प्रतिभा सम्मान विबुधकुल गव्य बनूँगा ।
इन्हें मान गुरू अघका प्रायश्चित करूँगा
इनकी चरणरेणुमें अपने शीष धरूँगा ॥

।। ५६ ।।

यों कह अष्टावक्र चरणमें शीष नवाया
बन्दी हुआ कृतार्थ पूज जीवन फल पाया ।
मुनिबालक को पूज पाप से मुक्त होगया
बन्दी मनके समाधान से युक्त हो गया ॥

।। ५७ ।।

अन्य महीसुरपुंगव करके बालसमर्चा
धन्य धन्य होगए प्राप्त कर निज सुकृतार्चा ।
याज्ञवल्क्य भी अष्टावक्र के सम्मुख आए
मैत्रेयी कात्यायनी पत्नीद्वय सँग लाए ॥

।। ५८ ।।

पूजा कलाविधान विप्रकी करके बोले
याज्ञवल्क्य वाणीमें सत्य ऋतामृत घोले ।
जो मैं नहीं तुरीयाश्रममें भी कर पाया
उसको तुमने प्रथमाश्रममें कर दिखाया ॥

।। ५९ ।।

कहाँ परिस्थिति जटिल देह विकलांग तुम्हारा
कहाँ प्रखर अतितरल ज्ञान गोमुखकी धारा ।
सभी असंभव संभव आज किए हैं तुमने
विकलांगों को दिव्यादर्श दिए हैं तुमने ॥

।। ६० ।।

अष्टावक्र तुम्हें मैं अपना शिर नवा रहा
बालक को भी वृद्ध आज सद्गुरू बना रहा।
जनकसभामें नूतन यह आश्चर्य हुआ है
वृद्ध शिष्य है पर सद्गुरू तो परम युवा है॥

।। ६१ ।।

उसी समय विबुधों ने विविध पुष्प वरषाए
मनो मेदिनी पर नन्दन के कुसुम विछाए ।
जय जय कह गन्धर्व किम्पुरूष गुणगण गाए
नारदने वीणा सुरराज मृदंग बजाए ॥

।। ६२ ।।

अष्टावक्र चरण सरसिज में कर प्रणाम शत
बन्दी विजित समुद्रमग्न हो गया विनयरत ।
मानो नील गगन में डूबा धूमकेतु ही
किंवा पापपंकमें फसा कलंक सेतु ही ॥

।। ६३ ।।

तदनन्तर कहोल ऋषि वरूणलोक से आए
अष्टावक्र जनक के पद में शीष नवाए ।
लख विकलांग तनयको ऋषि अतिशय पछताए
कर प्रयत्न भी शोकजलधिका पार न पाए ॥

।। ६४ ।।

अष्टावक्र तनयको ऋषि अतिशय दुलराए
लेकर गोद चूम आनन फूले न समाए ।
नलिन नयन नीरन्ध्रनीर से सुत नहलाए
ले उछंग उछला उत्सुक हो अतिसुख पाए ॥

।। ६५ ।।

द्वादशवर्षी शिशु दिखता था तीन वरषका
शाप भग्न उत्कर्ष हो चुका कर्ष हर्षका ।
ऋषि विकलांग तनयको लेकर पीटे छाती
मनो उन्होंने भ्रमवश खोई संचित थाती ॥

।। ६६ ।।

बोले फिर धर धीर वचनरचनामें नागर
आश्वासन दे सुतको मुनिसद्गुण शुभसागर ।
आज पुत्रका नाम यथार्थ किया है तुमने
मुझे पुत् नरकसे भी पर किया है तुमने ॥

।। ६७ ।।

दु:सह सही यातना माँ के जटिल जठरमें
संकट सहा असीम सुजाता जननिउदर में ।
फिर भी दिया न शाप तितिक्षा धन्य आपकी
समाधान कर चुकी साधना मान्या आपकी ॥

।। ६८ ।।

आज क्रीत में हुआ पुत्रके दिव्य गुणों से
सदा रहूँगा ऋणी तुम्हारे कर्मऋणों से ।
जो क्रीडनक मिटाया उसे बनाऊँगा मैं
जिसको मार सुलाया उसे जगाऊँगा मैं ॥

॥ ६९ ॥

जो संकट तुझे दिया उसे अब भंग करूँगा
तुझे किया विकलांग आज सकलांग करूँगा ।
जो इतिहास नसाया उसे रचूँगा फिरसे
जो प्रासाद ढहाया उसे पचूँगा फिरसे ॥

॥ ७० ॥

जिस कन्दुकको फेंका उसे गहूँगा करसे
जो मणि दूर भगाया उसे लहूँगा उरसे ।
जिसको माना गरल उसे अब अमृत कहूँगा
दुर्भाग्यों को मिटा पुनः सौभाग्य लहूँगा ॥

॥ ७१ ॥

अष्टावक्र स्वकृत से तुमने मुझे क्रीत कर
बना लिया जिन दास वस्य कर्मणा प्रीतकर ।
चलो रचो इतिहास हास तज कर नित नूतन
पुरुष पुरातन संस्तुत मानव मूल्य सनातन ॥

॥ ७२ ॥

ब्रीडित अष्टावक्र पितासे हो परितोषित
दृगमें जलभर बोले गद्गद् वचन प्रपोषित ।
पूज्य पिताश्री क्यों करते हैं मुझको लज्जित
व्यर्थ प्रशंसा पटसे करते मुझको सज्जित ॥

।। ७३ ।।

यह सब कुछ श्रीचरण सुकृततरू पूत परिणमन
जिसको चकित विधाता भी कर रहा सन्नमन ।
विधिविलेखित कुभाग्य रेखा भी पुरूष मिटाता
निज पुरुषार्थ साधना से समाधान जुटाता ॥

।। ७४ ।।

यह यथार्थ होकर स्पष्ट अद्यतन कथा से
वृथा असंभव प्रथा हो गई सिद्धिप्रथासे ।
अब कोई क्यों भाग्य कह चिल्लाएगा
कर्मठ बन क्यों नहीं कर्मकौशल लाएगा ॥

।। ७५ ।।

इस विधि सभी समस्या का समाधान करेंगे
पुरूषार्थी विकलांग साधनाह्वान करेंगे ।
संभावना सभी ढूढेंगे नियति गगनमें
पारिजात रोपित होंगे क्रीति नन्दन वनमें ॥

।। ७६ ।।

चलें पिताश्री आश्रम माँ कर रही प्रतीक्ष्या
रो रोकर मर रही कर रही भाग्य समीक्ष्या ।
देख मृतागत श्रीचरणों को जननी मेरी
होगी कार्तिक कुहू समान दीपाली घनेरी ॥

।। ७७ ।।

बोले ऋषि ब्रह्मणी निकट न रिक्त जाऊँगा
उसके लिए अलौकिक उपहृति ले जाऊँगा ।
तुम्हें बना विकलांग उसे मैं बहुत रुलाया।
सुतके शाप अनलमें उसको सदा जलाया ॥

।। ७८ ।।

उसे दिखाऊँगा सुतको सकलांग बनाकर
विकलांगोंका निजविषयक आक्रोश मिटाकर ।
निरनुक्रोश कलंक पंक का कर प्रक्षालन
तुम्हें सुजाताको सौंपूंगा कर शुभ लालन ॥

।। ७९ ।।

अष्टावक्र निहार रहे हो नदी समंगा
जो गंगाकी सुता तपोबल कलित तरंगा ।
इसमें करो प्रवेश तुरत सकलांग बनोगे
विकलांगो के लिए सुखद विकलांग बनोगे ॥

।। ८० ।।

अष्टावक्र समंगा में करके अवगाहन
तज विकलांग स्वरूप बने सकलांग सुभगतन ।
अष्टावक्रता गई अवक्रा विलसी काया
जय जयकार गगन भूतल में उसी क्षण छाया ॥

।। ८१ ।।

सुऋजु हुए सब अंग अनंग अनेक लजावन
उमड़ पड़ा कैशोर मुनिसुतावृन्द लुभावन ।
उन्नत मसृणकपोल नयन खंजन रतनारे
आनन विधु अकलंक अधर पल्लव अरुणारे ॥

।। ८२ ।।

कलभशुण्ड भुजदण्ड कण्ठदर उर विशाल था
अंसल अंस मखोपवीत उज्ज्वल रसाल था ।
अष्टावक्र समंगा में कर सन्ध्यावन्दन
बाहर निकले हो सकलांग महीसुरनन्दन ॥

।। ८३ ।।

आश्रम आकर जननि चरण में शीष नवाये
सपदि सुजाता ने अंचल में तनय छिपाये ।
लख सकलांग सूनको हुई प्रसन्न सुजाता
आज दाहिने उसे हो गए वाम विधाता ॥

।। ८४ ।।

व्योप विपिन में एक रूप आनंद छा गया
उपरत अष्टावक्र उटज में मनो आ गया ।
स्वाभिमान द्विजकुल का बिलसा प्रत्यावर्त्तित
समाधान विकलांग समस्याका आवर्त्तित ॥

।। ८५ ।।

अष्टावक्र रहे आजीवन उर्द्धसुरेता
बाल ब्रह्मचारी अविकारी मन्मथ जेता ।
ऋषियों के भी पूज्य बने ऋषि श्रुति के द्रष्टा
विकलांगों के भाग्य विधाता मंगल स्रष्टा ॥

।। ८६ ।।

इस प्रकार विकलांग समस्या समाधान कर
अष्टावक्र बने इतिहास पुरूष महर्षि वर ।
समाधान सम्मान वेश में अब प्रस्तुत है
महाकाव्य का चरम सर्ग इसमें संस्तुत है ॥

।। ८७ ।।

वैवस्वत मन्वन्तर चतुर्विंशिका त्रेता
प्रकट हुए श्रीराम अवध में अगजग जेता ।
भरत भद्र लक्ष्मण शत्रुघ्न सुखद त्रय भाई
दशरथ कौसल्या के भवन लसे रघुराई ॥

।। ८८ ।।

शिवधनु तोड़ बने सीतावर दशरथनन्दन
बने जनक के जामाता हरि अशुभ निकंदन ।
पिता वचन से राज्य त्याग सह सीता लक्ष्मण
चित्रकूट दंडक बनबासी बने विचक्षण ॥

।। ८९ ।।

सीता प्रत्याहरण दशबदन कदन मनोहर
हनूमान सेवा निष्ठा वानर प्रमोदकर ।
श्री रघुवर पुष्पकारूढ़ कोसलपुर आए
रामराज्य अभिषेक शीत किन्नर गण गाए ॥

।। ९० ।। (गीत)

राजे भी देखे महाराजे भी देखे
मेरे राम जैसा कोई राजा न देखा।
दीन दयाल उदार शिरोमणि
कौन भक्त भय हारी।
पद पकंज रज परस अहल्या
कौन देव ने तारी॥
देवते भी देखे महादेवते भी देखे।
मेरे राम जैसा कोई देवता न देखा॥ (१)

सुर दुर्लभ तज राज अवध का
कानन किसको भाया
केवट कोल किरात जनों को
किसने गले लगाया।
त्यागी भी देखे महात्यागी भी देखे
मेरे राम जैसा कोई त्यागी न देखा॥ (२)

किसका विरूद पतित पावन है,
किसने गीध को तारा
किसने शबरी के फल खाए,
हनुमत को किसने दुलारा।
योगी भी देखे, महायोगी भी देखे
मेरे राम जैसा कोई योगी न देखा॥(३)

कपिपति रीछ निशाचर को
कब किसने मित्र बनाया
गिरिधर जैसे अनित शठों को
कब किसने अपनाया।
दानी भी देखे, महादानी भी देखे
मेरे राम जैसा कोई दानी न देखा॥ (४)

॥ ६१ ॥

राजा बने राम सीता महारानी अवध की भरत लखन रिपुदमन पवनपुत्र
परिकर परमपुनीत सुबिनीत सोहे, सीतापति मन मोहें कमन शासन सूत्र ।
वर्णाश्रम अनुकूल प्रभा विरहित शूल रामराज्य लखय विलसित सुखमूल कालचक्र
रामभद्राचार्य प्रभु भद्र दरसन हेतु द्विजकुल केतु भक्ति सेतु आए अष्टावक्र ॥

॥ ६२ ॥

श्रंगीऋषि यज्ञ में आमंत्रित हुआ समस्त गुरू संग अयोध्या का राज परिवार था
तीनों राजमाताओं ने सवशिष्ठ अरूंधती श्रंगबेरपुर किया पूत पद सारथा ।
वहाँ समागत हुआ गुरू महीसुर युत मिथिलधिनायक का विमल विचार था
रामभद्राचार्य प्रभु भक्त अष्टावक्र उर उमगा दिदृक्षामय प्रेम पारावार था ॥

॥ ९३ ॥

पाके वशिष्ठ निदेश अष्टावक्र विप्र अवक्र अयोध्या को आए
हो प्रतिहार प्रवेशित राजसभा में महर्षि रहे सकुचाए ।
देखि सिंहासनासीन सीतासह लोचन थे मुनि के ललचाए
मानो द्विधातनु पूर्व अपूर्व अपूर्व दृगंचल के फल पाए ॥

॥ ९४ ॥

नील तमाल से श्यामशरीर पे पाट पीतांबर सोह रहा था
मरकत शैल पे बाल दिनेश सा अष्टावक्रांबक मोह रहा था ।
भाल पे कंचनापीड विराजित विश्व की पीडा विपोह रहा था
गिरिधर की गिरा देवगवीमय नव्य सुगव्य को जोह रहा था ॥

॥ ९५ ॥

कानों में थे मकराकृत कुंडल आनन सर्बरी साजनलाजे
राजीवलोचन सोच विमोचन भाल पे रोचन पुंड्र विराजे ।
केचूर कंकण हार महाधन किंकणी भूषण भूषण भ्राजे
गिरिधर ईश ऐश्वर्य सौंदर्य समेत शृंगार किए अति छाजे ॥

॥ ९६ ॥

स्वर्ण सिंहासन वाम विभाग में रूप स्वभाव सुशील बिनीता
नील निचोलवती रति कोटिक मोह रही प्रभु प्रीति प्रतीता ।
रूप की राशि मनो विरचि विधि लक्ष्मी अनेकन को जिन जीता
विश्व की स्वामिनी राम की भामिनी सीता विराजति गिरिधर गीता ॥

॥ ९७ ॥

अवलोक निहाल हुए थे अष्टावक्र आनंद में वे समा रहे थे
बहु जन्म दरिद्र ज्यों वेद महाधन सानंद चित्त कमा रहे थे ।
नहीं हो रहे थे मुनि लोचन तृप्त उन्हें हो विसंग भ्रमा रहे थे
वे तो गिरधर ईश के अंग अनंग में अंग रमा रहे थे ॥

॥ ९८ ॥

देखके राजाधिराजी की शोभा अष्टावक्र वक्र हो सोच रहे थे
नीरजलोचन को भर लोचन लोचित होकर भी लोच रहे थे ।
भूल बिराग महा अनुराग में वारि बिलोचन मोच रहे थे
गिरिधर ईश को नेह निहार के बोध संकोच संकोच रहे थे ॥

॥ ९९ ॥

पाके सभाजन सीता के साजन प्रेम महारस भाजन पाए
राजन राजन राजन राजन राजन को अवलोक लुभाए ।
आसन पाके समीप बिठा के रघुत्तम को मुनि ने उर लाए
गिरिधर ईश के दर्शन के मिस मानों विदुरित संभ्रीति पाए ॥

॥ १०० ॥

सीता ने प्रणाम किया मुनि ने आशिष दिया दीपिका बिलोक मृग से चकित हो गए
अंग अंग में लसित सुषमा सौभाग्य देख भोरि भाग पेखि पेखि विचकित हो गए ।
खो गए महाभिमान गूढ़ ग्यान गर्ब खर्ब सर्व पतिपत्नी भक्ति सुशमित हो गए
रामभद्राचार्य प्रभु प्रिया भाव बारिधि में होके परिमग्न लग्न विरमित हो गए ॥

॥ १०१ ॥

पूछ के कुशल कोसलाधीश की पटरानी बोली
पितृ कुलगुरू से प्रतीति कीजिए
मिथिला की बेटी सीता आपकी भी लाडली हूँ लली हूँ
लड़ैती मुझे पारिवरह दीजिए ।
मैं किमित माँगूगी भले हूँ रानी कोसल की
प्रीतिकी यही है रीति आप जान लीजिए
जन्म जन्म की सेविका रहूँ मैं रामभद्र जू की
अष्टावक्र वर देके प्रेम में पसीजिए ॥

॥ १०२ ॥

अष्टावक्र बने भावुक कुछ बोल न पाए
जनकसुता के भाव सिंधु में चित्त डुबाए ।
धरे माथ पर हाथ मैथिली के मुनिनायक
नेत्र वारि से नहलाए श्रुति सुस्मृति गायक ॥
सीताभक्ति सुमल्लिका हृदय विपिन में खिल गई
गिरिधर प्रभु रति निर्मला अष्टावक्र को मिल गई ॥॥

॥ १०३ ॥

बोले मुनिवर अहो धन्य मिथिलेश किशोरी
धन्य धन्य तुम रामचन्द्र मुख चंद्र चकोरी ।
विश्वंभरा भगवती की तुम श्लाघ्य प्रसूती
मिथिला सूक्ति की मोती भारत संस्कृति ऊती ॥
रामभद्र की भामिनी श्रीकीश्री जग बंदिता
सतत् सुहागिन तुम रहो सीता अमल अनिंदिता ॥॥

॥ १०४ ॥

परस पा जिनके पदपद्मका
सकल भक्षक हव्य हुताश भी ।
जगति पावन पावन हो गया
अशुचिभाव विगर्हित खोगया ॥

॥ १०५ ॥

हरिणशावकलोचन लोचना
वह रहीं वर माग मनस्विनी ।
विनत हो मुझसे सधवात्व का
यह महाजनमंडनशील है ॥

॥ १०६ ॥

मातः सीते हरिणनयने रामचन्द्रैकभार्ये
भव्ये नव्ये वसुमतिगवी गव्यदेहेसु गेहे ।
शश्वत् होके त्रिभुवनगुरू प्रार्थिता धर्मपत्नी
सौभाग्यांभोनिधिशशिकला नित्य सीमन्तिनी हों ॥

॥ १०७ ॥

अभिराम सीतारामसे समाधान सह सम्मान पा
श्रीचरणप्रेमपयोधिमें अभिमान प्लवको भी वहा ।
कर नमन दे आशीष अष्टावक्र निज आश्रम गए
यों रामभद्राचार्य गिरिधर काव्यसर्गामृत नये ॥

॥ १०८ ॥

सीताराम कृपामयी वसुलसत् सर्गा समस्या सुधा
छन्दश्री विकलांग प्रीणनपरा सद्भारती संस्कृती ।
अष्टावक्रचरित्रचर्चनमहाकाव्यैक भावांजली
होवे भारत भारतीबुधनुता श्रीरामभद्रार्पिता ॥

नमो राघवाय

॥ श्रीराघवः शन्तनोतु ॥